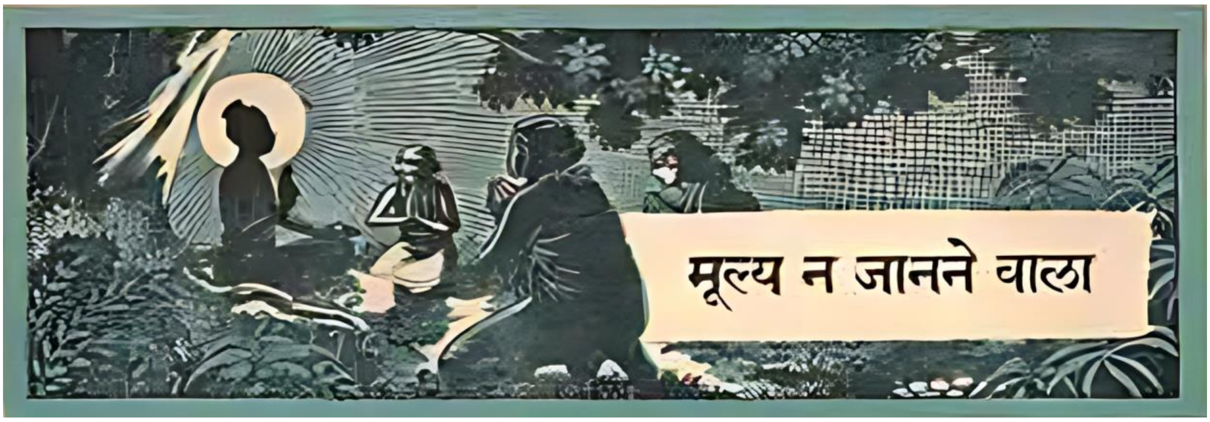





यह बहुत पुरानी बात है - मगध राज के समय की। एक बार तब बोधिसत्व ने हाथी का रूप धारण किया। उस हाथी का रङ्ग ऐरावत की तरह सफेद था। और उसके सौन्दर्य के बारे में तो कहना ही क्या? इसी कारण मगध राज ने स्वयं उसको अपने महल में रख लिया था।

एक त्योहार के दिन सारा का सारा मगध राज्य ऐसा सजाया गया मानों देवलोक को भी मात कर रहा हो। सारे शहर में बड़े जोर-शोर से जलूस निकालने का इन्तजाम किया गया। इसलिए उस हाथी को भी खूब सजाया गया। रास्ते भर लोग जोश और अचरज के साथ कह रहे थे- "देखो ! इस हाथी की क्या शान है! क्या सौन्दर्य है! क्या बढ़िया चाल है ! यह सचमुच महाराजाओं के महलों में रहने लायक हाथी है।"

ये बातें सुन राजा को सन्तोष न हुआ। बल्कि यह मन ही मन कुढ़ने लग। बिना किसी बजह के उसके मन में हाथी के लिए द्वेष-सा पैदा हो गया और वह द्वेष इतनी बुरी तरह बढ़ा कि राजा ने निश्चय कर लिया कि बिना हाथी को मरवाए बह आराम की नींद नहीं लेगा।

अगले दिन महावत को बुलवाकर राजा ने पूछा-"देखो महावत। इस हाथी ने कुछ सीखा बीखा है कि नहीं?" बिना किसी हिचकिचाहट के महावत ने जवाब दिया-"हुजूर ! इस हाथी ने बहुत कुछ सीख लिया है।"

"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।" मगध राजा ने कहा। यह सुन महावत ने कहा-"गुस्ताखी माफ हो... नहीं महाराज। इस हाथी ने तो कमाल हासिल कर लिया है।

माधव शर्मा

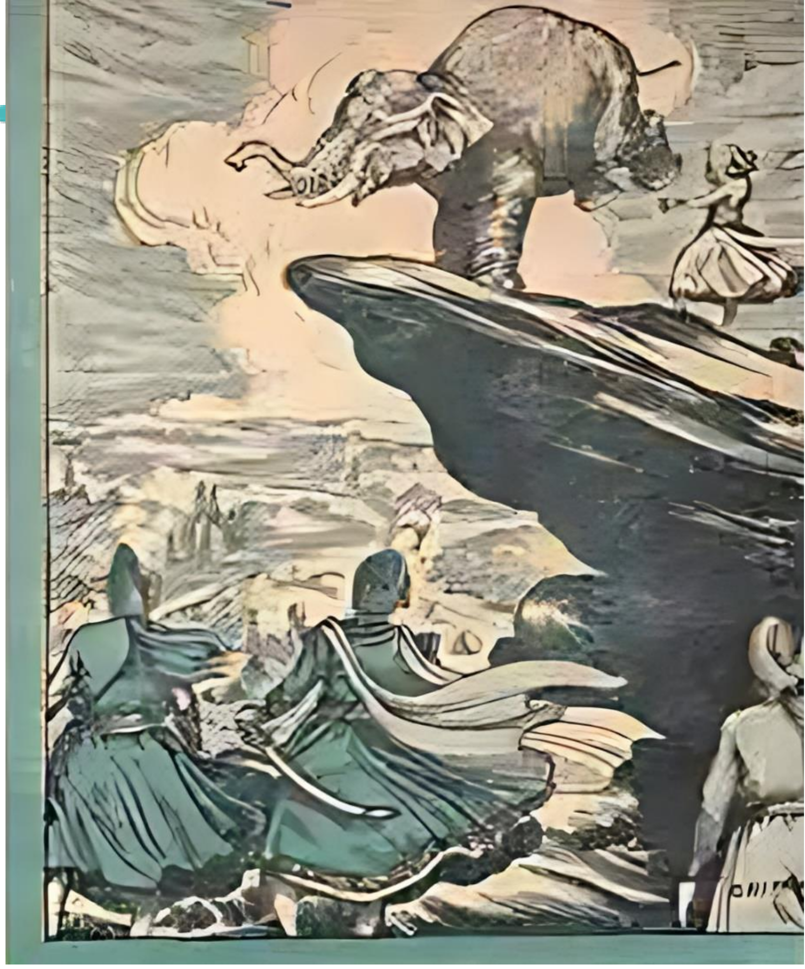
"अगर तेरे कहने के मुताबिक यह सचमुच होशियार हाथी है तो क्या तुम उसे उस पहाड की चोटी पर चढ़ा सकते हो ?" राजा ने पूछा।

"वाह, हुजूर ! जरूर।" यह कहता, महावत हाथी की पीठ पर चढ़ गया और उसे पहाड़ की चोटी पर ले गया। उसके बाद राजा और उसका परिवार भी चढ़ आया।

वह चोटी एक जगह जीभ की तरह आगे बढ़ी हुई थी। उसके बाद बड़ा खड्ड था। वहाँ हाथी को रुकने को कहा गया।

"तू कहता था यह हाथी बहुत ही होशियार है। तो देखें जरा इसे तीन पैरों पर तो खड़ा करो।" राजा ने कहा। महावत ने अंकुश से ईशारा किया और कहा-"बाबू! महाराज का हुकुम हुआ है। तीन पैरों पर खड़े तो होओ।" हाथी खड़ा हो गया।

उसके बाद राजा ने फिर कहा-"अच्छा, देखें यह पहिले दो पैरों पर खड़ा हो सकता है कि नहीं।" उस चतुर हाथी ने वह भी कर दिखाया। "हाँ, यह तो ठीक है; मगर इस बार इसे पिछले दो पैरों पर तो खड़ा



करो।" राजा ने दुबारा हुकुम दिया। हाथी ने यह भी किया।

राजा ने फिर पूछा-"क्या यह हाथी एक पैर के बल खड़ा हो सकता है?" वह गजराज एक पैर पर भी खड़ा हो गया।

हर तरह सताये जाने पर भी यह हाथी उस पर्वत की चोटी से गिरा नहीं और इस वजह से राजा की इच्छा पूरी नहीं हुई। उसे शायद कुछ सूझा भी नहीं। बहुत कुछ सोच विचारने के बाद....

"क्यों महावत, तुम तो इसकी बहुत बड़ाई बखान रहे थे, अभी इस हाथी




की एक और परीक्षा लेनी है।" राजा ने गम्भीरता से कहा।

"अगर यह तेरे बस की बात है तो इस हाथी को बिना पैरों के बल हवा में चलवाओ।" राजा ने कहा।

महावत अपने बेजोड़ हाथी के बारे में सोची हुई राजा की बुरी चाल समझ गया। मगर वह घबराया नहीं। उसने अपना होसला बनाया रखा। उसने हाथी के कान में धीमे-धीमे कहा-"बाबू ! ऐसा लगता है कि राजा यह चाहता है कि तुम इस चोटी से नीचे कूद कर अपने प्राण खो दो। उसे तेरी कीमत नहीं मालूम। अगर तुझ में सचमुच शक्ति है तो मुझे चढ़ाकर हवा में उड़ जा।" महावत ने उड़ने का ईशारा किया।

वह अनमोल अद्वितीय हाथी, हवाई-जहाज की तरह पहाड़ की चोटी से उड़ चला। हाथी की पीठ पर चढ़े हुये महाबत ने इस प्रकार कहा।

"हे राजा! तू इस हाथी को मामूली हाथी समझ रहा है। यह मामूली हाथी नहीं है। इसमें दिव्य गुण हैं। यह तुझ जैसे मूल्य न पहिचानने वाले आदमी के महल में रहने लायक नहीं है। मूल्य न जानने वाले अनाड़ी इस हाथी को ही नहीं ऐसी कितनी ही चीजों को खो बैठते हैं। जो तेरे पास ऐश्वर्य और सम्पत्ति हैं, वे भी इसी प्रकार चली जायेगी। तेरी ख्याति और प्रतिष्ठा भी चली जायेगी।" महावत यह बार बार कहता जाता था।

"मूर्ख को जब बड़े ओहदे पर बैठा दिया जाता है तो वह दूसरों का मूल्य न जानकर खुद तकलीफ में पड़ जाता है। यह अपने आप ही अपनी मूर्खता को प्रकट कर देता है और उसी वजह से सबका शत्रु भी बन

जाता है। कम से कम अब भी इस परम सत्य को जानो।"

हवा में उड़ता-उड़ता महायत काशी राज्य पहुँच गया और वहाँ एक बगीचे के ऊपर खड़ा हो गया। आकाश में विहार करते हुए उस हाथी को देखते ही शहर में बेहद शोर शरावा होने लगा। बेशुमार लोग इस आश्चर्य को देखने लगे।

यह खबर देखते-देखते राजा के पास भी पहुँची। झट, जहाँ हाथी खड़ा था, स्वयं आकर काशी राजा ने कहा- "'मेरे राज्य में आकर गजराज ! मेरा उद्धार कीजिये। उत्तर आईये।"

इस बात को कहते ही, बोधिसत्व जो हाथी का रूप धारण किये हुये थे नीचे उतर पडे। उतरकर अपनी सूँड़ उठाकर काशी राज को नमस्कार किया। काशी राज के बार-बार पूछने पर महावत ने सारी कि सारी घटना सुना दी। काशी-राज और महावत बहुत ही सन्तुष्ट हुए।

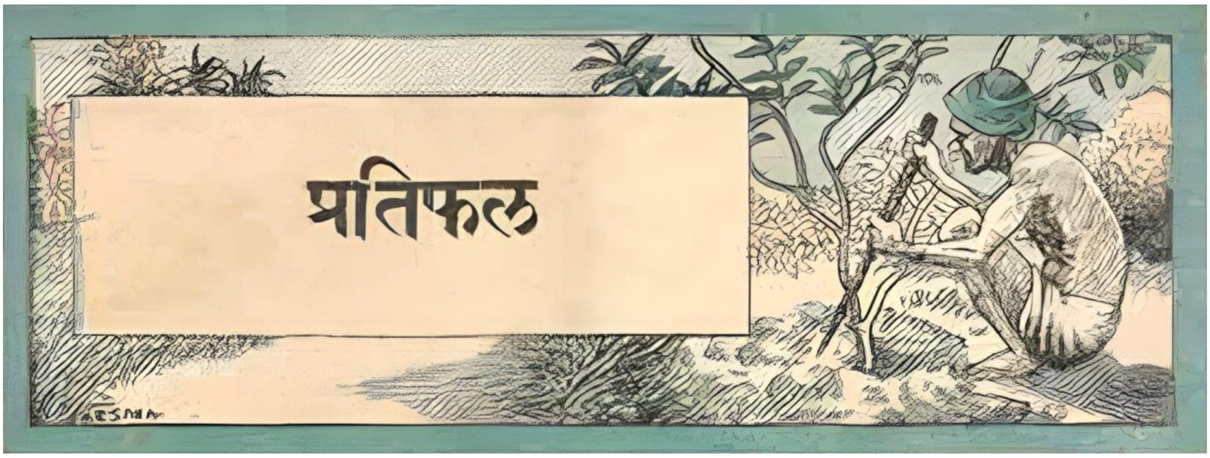
काशी-राज ने उस हाथी को अच्छी तरह सजाकर एक विशाल और सुन्दर भवन में रखा। और उस बेमोल हाथी को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करने लगा।

इतना ही नहीं, उसने अपने राज्य को तीन भागों में चाँट दिया। एक भाग हाथी का रूप धारण किये बोधिसत्व का पालन-पोषण के लिये दे दिया, और दूसरा महावत को सौंप दिया और तीसरा भाग अपने पास रख लिया।

गजराज को इस तरह अचानक अपने राज्य में पाकर, काशीराज ने अपना सौभाग्य समझा। बोधिसत्य के भूमि पर पैर रखते ही काशी-राज की श्री-सम्पदा दिन दूनी रात

चौगनी चढती गई, और काशी-राज की प्रसिद्धि भी दूर-दूर तक फैलने लगी।





# प्रतिफल

बीरु एक माली था। वह एक दिन अपने मालिक के बगीचे में पेड़ों के लिए थाले तैयार कर रहा था। यकायक उसको पीछे से किसी के बूटों की टप टप आहट सुनाई दी। बीरु ने पीछे मुड़कर देखा। आनेवाला व्यक्ति कोई रईस-सा लगा। उनके पहिनावे...कोट, बूट, टोपी, ऐनक वगैरह के देखने से ही मालूम हो जाता था कि वे कोई बड़े आदमी हैं। बीरु ने खड़े होकर उनको नमस्ते की।

"क्यों भाई ! बीरु माली तुम ही हो न ?" उन्होंने पूछा। यह कहकर वह व्यक्ति रुक गया।

"जी हाँ, बाबूजी" बीरु ने कहा।

"क्या तुम्हे याद है दस साल पहले तुम कहाँ काम करते थे ?" उन्होंने सवाल किया।

"बाह, बाबू जी। याद क्यों नहीं होगा? मालिक जसवन्त सिंह के बगीचे में माली का काम करता था। वे बड़े दयालू, आदमी थे। जङ्गल में भी उनका नाम लें तो कोई खाना देनेवाला मिल जायेगा। वे अचानक बिना किसी को कहे ही विदेश चले गये। नहीं तो क्या में इस जन्म में उन्हें छोड़ कर किसी और के यहाँ भला काम करता ?" कहता कहता बीरु अपना एहसान बखानने लगा।

"हाँ उनके क्या कहने....!" यह कहकर वह ब्यक्ति रुक गया।

"वे कुशल तो है बाबू जी ?" बीरु ने घबराते हुए पूछा।

"वही तो कहने जा रहा हूँ। अफसोस! जसवन्त सिंह वहीं विदेश में गुज़र गये।" उस नवागन्तुक ने कहा।

शान्ति श्रीवास्तव

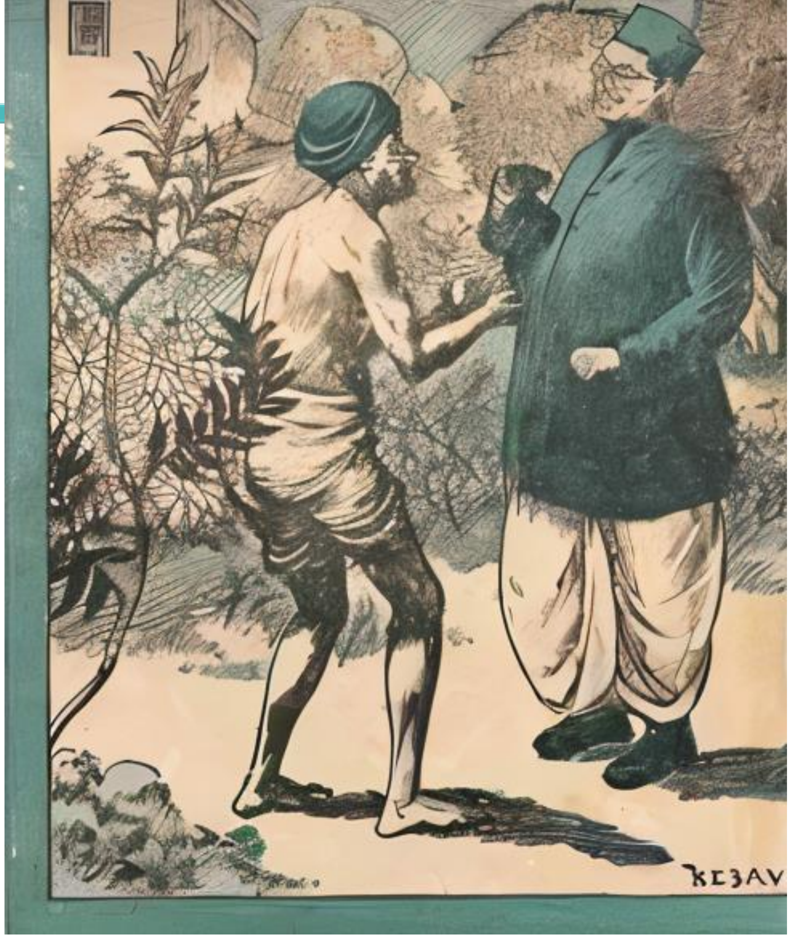
यह बात सुनते ही बीरु को लकवा-सा मार गया। वह भौंचक्का रह गया। अपना दुःख प्रकट करने लगा।

कुछ देर बाद, बीरु सम्भलकर कहने लगा-"अपने जसवन्त सिंह जी जैसे आदमी इस दुनिया में ही नहीं है। उनके सरीखे धर्मात्मा...." वह उनकी प्रशंसा करने लगा। नवागन्तुक से बीरु ने पूछा "क्यों बाबू! क्या आप उनके रिश्तेदार होते है?"

"नहीं तो.... मैं उनका वकील हूँ। जसवन्तसिंह जी गुजर जाने से पहिले एक वसीयत नामा लिख गये थे। उसमें वे हमारे कस्बे के, पाठशाला, चिकित्सालय, ग्रन्थालय और न जाने कितनी संस्थाओं को अपनी जमीन जायदाद देते गये...." उस व्यक्ति ने बताया।

बीरु माली यह सुन मन ही मन खुश हुआ।

इसके बाद, अपने कोट के जेब से एक थैली निकालकर-"बीरु। यह लो मेरे द्वारा तुझे यह पहुँचाने के लिए जसवन्त सिंह...." कहते हुये वकील ने उसके हाथ में एक थैली दे दी। थैली को देखते ही बीरु अचरज में पड़ गया। थैली पर सील लगी हुयी




थी। उस सील को खोलना, भला सत्ययुग का बेचारा बीरु क्या जानता ? इसलिये उसने वकील साहब से मिन्नत की-"बाबू जी, यह देखिये तो क्या है?" उन्होने सील खोलकर देखा। थैली में पूरे दो हजार रुपये थे।

बीरु को अपनी आखों पर ही यकीन न हुआ। काँपते हुए हाथों से वह थैली लेकर, वकील साहिव को नमस्ते कर, अपने झोपड़े को चला गया।

बीरु पहिली बार ही इतनी बड़ी रकम अपनी आँखों से देख रहा था। उसने यह रकम सपने में भी नहीं देखी थी। मालिक



जसवन्तसिंह के विदेश जाने से पहिले बीरु उनका माली था। बीरु उनका विश्वासपात्र भी था। मालिक के चले जाने पर उनका काम काज एक मुनीम देखा करता था। वह मुनीम बहुत ही मक्कार था। इन दोनों की आपस में बनती न थी। इसलिये लाचार होकर बीरु को अपनी नौकरी छोड़नी पड़ गई।

अब बीरु एक मारवाड़ी के घर माली का काम कर रहा था। इस मालिक का एक लड़का था जिसका नाम 'गुलाब' था। उसकी उम्र दस साल की थी। वह बहुत ही चुस्त था। पर था अब्बल दर्जे का चोर। वह लड़का बीरु के साथ हिल मिल कर रहा करता था। तीनों पहर वह बीरु की झोपड़ी के आस पास ही खेलता कूदता रहता। बीरु के हाथ में रुपये की थैली आते ही एक बड़ी समस्या पैदा होगई थी। उसकी झोपड़ी में न किवाड़ थे न चटखनियाँ ही। और हमेशा 'गुलाब' वहीं मटरगश्ती करता रहता था। उसको मना भी कैसे किया जाय ?

बहुत माथा पच्ची के बाद, उस रोज शाम को, किसी को आसपास न पाकर, बगीचे में एक पीपल के पेड़ पर चढ़ कर उसकी खोल में उसने थैली रख दी और घर चला गया। बीरु का डर जाता रहा।

बाद में, बीरु सोचने लगा कि वह मालिक के पास जाकर कहेगा- "बाबू जी, मैं बूढ़ा हो गया हूँ। मैं अपने गाँव चला जाऊँगा, वहीं जैसे-तैसे रहे-सहे दिन काट लूँगा। मुझे इजाजत दीजिए।"

अपने वेतन के बाकी रुपये लेकर अगले दिन सबेरे ही बीरू ने जाने का इरादा किया।

बिना किसी के देखे जसवन्त सिंहजी की मेहरबानी से मिली हुई उस दो हजार की थैली को, खोल में से लेकर और गाँव जाकर आराम से जिन्दगी बसर करने की उसकी एक मात्र इच्छा थी।

बीरु ऐसे सरने ही देख ही रहा था कि कहानी ने अपना रुख सहसा बदला। और कुछ का कुछ गुजरा। बीरु को इसकी खबर भी न लगी। न जाने 'गुलाब' को कैसे मालूम हो गया, उस खोल में से बीरु की थैली को उसने चुरा कर, सीधे आकर अपने पिता के हवाले कर दी।

'गुलाब' खुशी से फुल न समाता था। उसने अपने पिता से कहा-'बीरु, माली इस थैली को एक जगह रख रहा था, मैंने देख लिया और आपके पास ले आया पिताजी।"

वह सन्तोष से मुस्कराने लगा। सेठ भी खुशी के मारे फूल गया। वह थैली में रखे रुपयों के गिनने में मशगूल था और जो कुछ उसके लड़के ने कहा अच्छी तरह सुन भी नहीं पाया। "ठीक दो हजार, दो हजार ठीक...." सेठ बार-बार रुपयों को गिनने लगा। "अच्छा बेटा गुलाब ! तुम जाओ खेलो।" लड़के ने बाहर चले जाने पर, सेठ बार-बार खुशी-खुशी रुपया गिनता चला गया।

उस रात को बीरु ने मालिक के पास बाकर नम्रता से कहा-"मुझे गाँव में बहुत जरूरी काम है। अवश्य जाना



होगा। कह नहीं सकता वापिस आ सकूँगा कि नहीं।"

"अच्छा तो बीरु वैसा ही सही। जाने से पहिले जो तुम्हें पैसे मिलने हैं सो लेते जाना। मगर सुनो तो। इस बुढ़ापे में इतने आराम की नौकरी मिलनी बहुत मुश्किल है। कुछ भी हो- दस साल से हमारे यहाँ काम कर रहे हो, तुम्हें जाते देख अफसोस होता है।" मालिक ने दुःख का अभिनय करते हुए कहा।

ऊपर-ऊपर से ऐसी मीठी-मीठी बातें सेठ ने कह तो दी। पर अन्दर ही अन्दर यह सोचकर-"इसके दो हजार रुपये तो मिले, अच्छा

है, जाये अपनी बला से।" सेठ खुश हो रहा था। अगले दिन बीरु अपना वेतन ले, छुपे छुपे चारों तरफ होशियारी से देखता हुआ पीपल के पेड़ के पास जा पहुँचा।

खोल में अपनी थैली को सही सलामत पा वह बहुत ही सन्तुष्ट हुआ। उसने सोचा-"धर्म चारों पावों के बल चल रहा है।" बख्शीश में मिली हुदी थैली को लिये हुये, बीरु खुशी खुशी भगवान को धन्यवाद देते देते अपने गाँव चला गया।

उसके बाद गुलाब अपने पिता के पास आकर कहने लगा-"पिताजी ! बीरु बहुत अभागा है। वह सोचता होगा कि वह बड़ा अक्लमन्द है। उसे अच्छी गुलाट दी। अगर वहाँ थैली न दिखाई दी तो उसके होश गायब हो जायेंगे.... बेचारा।"

सेठ मुस्कराया और लड़के को पास बुलाकर कहने लगा-"बेटा गुलाब, जहाँ मैंने वह थैली रखी है, वह जगह, आदमी तो अलग, भगवान को भी खोजने पर न मिलेगी। फिर इस पागल बीरु के तो कहने ही क्या?" वह अपनी होशियारी पर अपने आप ही गर्व से हँसने लगा।

तुरन्त गुलाब उतावलेपन से पूछने लगा-"क्यों पिताजी ? कहाँ रखी है? पिताजी, कहाँ है थैली ?"

सेठ अपने लड़के को और नजदीक बुला कान में कहने लगा-"बेटा, किसी को न मालूम होने देना। हुशियार रहना। हमारे बगीचे में, पूरब की तरह जो पुराना पीपल का पेड़ है, मालूम है न ? उसी के खोल में रखा है।"

"अरे, अरे, पिताजी, बीरु ने भी उसे वहीं रखा था। मैं भी उसे उस पेड़ की खोल से चुरा लाया था।" कहते-कहते गुलाब बेजान-सा हो गया।






# विकट हास्य

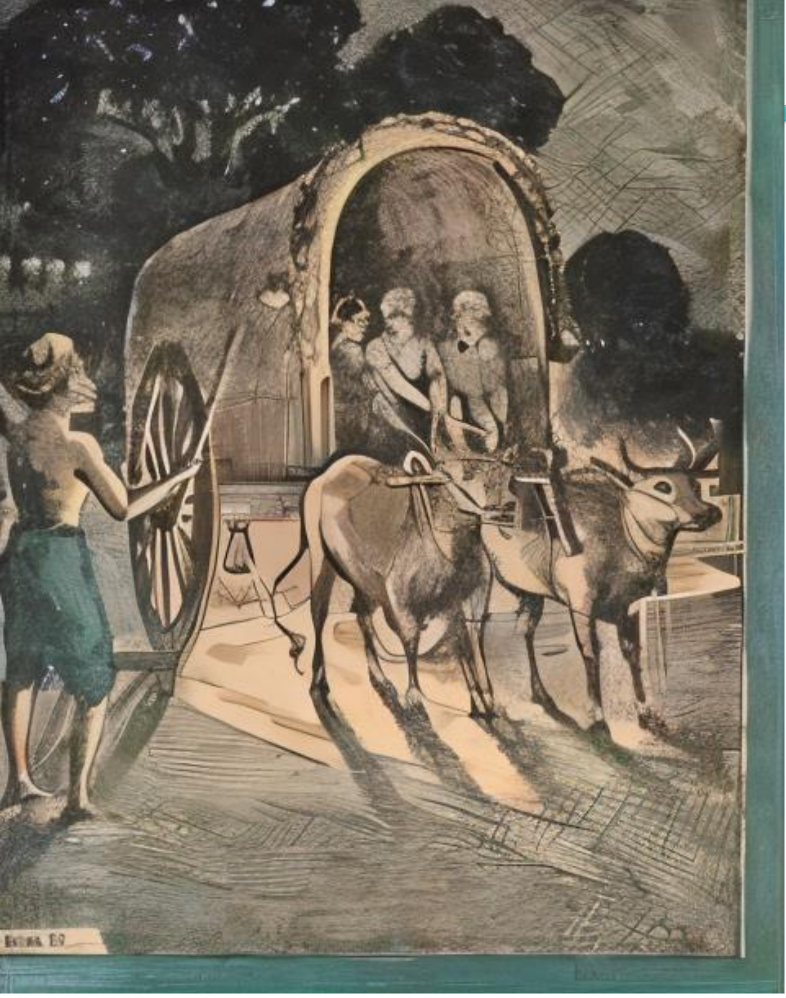
बहुत दिन पहले, विन्ध्याचल के जङ्गल में रास्ते के बगल में, एक आश्रम था। उस आश्रम में एक परमयोगी तपस्या किया करता था। उनका शरीर हट्टा-कट्टा था। उनकी एक हाथ लम्बी चमकती काली दाढ़ी थी। योगी को देखते ही हर किसी को ऐसा लगता था कि उनके सामने साष्टाङ्ग करे।

ये योगी उस जङ्गल में कब आये, कैसे आये, कब उस आश्रम की स्थापना की, इनके बारें में किसी को भी कुछ न मालूम था। मालूम न होने के कारण जितने मुँह उतनी बातें। चाहे किसी ने कुछ भी समझा हो सबका यही विश्वास था कि वे महायोगी संसार का उद्धार करने आये हैं। वे इस भवसागर से तरा देंगे, यह सोच कर लोग उनके पास अक्सर आया जाया करते।

मगर वे योगी-प्रवर किसी से बातचीत तक भी न करते। वे मौन-व्रत का पालन करते। आश्रम में, एक ऊँचे चबूतरे पर पद्मासन लगा कर बैठा करते। देखने वालों को ऐसा मालूम होता था मानों उनका इस संसार से कोई बास्ता ही न हो। इस वजह से, आने जाने वाले पत्र-पुष्प आदि भक्ति से भेंट कर, स्वामी को एक बार प्रणाम कर चले जाते थे।

इस तरह उस जङ्गल में जहाँ डाकू लुटेरों की भरमार थी, लोगों का आना जाना अधिक हो गया। परिणाम स्वरूप उस ईलाके में डाके डकैतियाँ कम होनी चाहिये थीं, परन्तु कम हुयी नहीं, बल्कि रोज़ ब रोज़ अधिक होती गई।

आधी रात के करीब उस रास्ते से एक गाड़ी जा रही थी। उस गाड़ी में तीन



स्त्री, दो पुरुष और एक लड़का बैठे हुये थे। वे स्त्रियाँ गहनों से लदी हुयी थीं। यकायक एक डाकू ने आकर उनका रास्ता रोका, उसकी पगड़ी, बिजली सी बड़ी बड़ी आँखें, तलवार जैसी बड़ी-बड़ी नोकीली मूँछे, हाथ में मोटा लट्ठ देखते ही गाड़ी में बैठे हुए लोगों के प्राण पखेरू उड़ गये। किसी के सुख से आवाज तक न निकली।

बडे लट्ठ से जमीन पर टक टक करते हुये, वह चोर उनके पास आकर कहने लगा-"भाईयों और बहिनो। मैं पेशे से चोर हूँ। मगर मेरा अपना एक तरीका है। मुझे अपका धन चाहिये, प्राण नहीं चाहिये। इसलिये चुपचाप जो कुछ आप लोगों के पास है अगर दे देंगे तो आपको किसी बात का डर नहीं। अगर आपने मुकाबिला किया, और हल्ला किया; तो उस पेड़ों के शुरुमुट में जो मेरे गिरोह के दस आदमी खड़े हैं वे आकर आपका मिनटों में काम तमाम कर देंगे। एक बार ईशारा किया कि नहीं फिर देख लेना। समझे?"

गाड़ी में बैठे हुए लोग चोर द्वारा दिखाये हुए झुरुमुट की तरफ देखने लगे। वहाँ बडे-बडे सिरों को देखते ही उनके होश गायब से हो गये। कुछ सूझता नहीं था। इसलिए आदमियों ने सिर झुका दिये और स्त्रियों ने अपने गहने उतारकर चोरों के सरदार के सामने रख दिये। तब उस सरदार ने उनको आशीर्वाद दिया। "भगवान करे कि आप लोगों का सफर आराम से कटे।" गहने उठाकर वह वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गया।

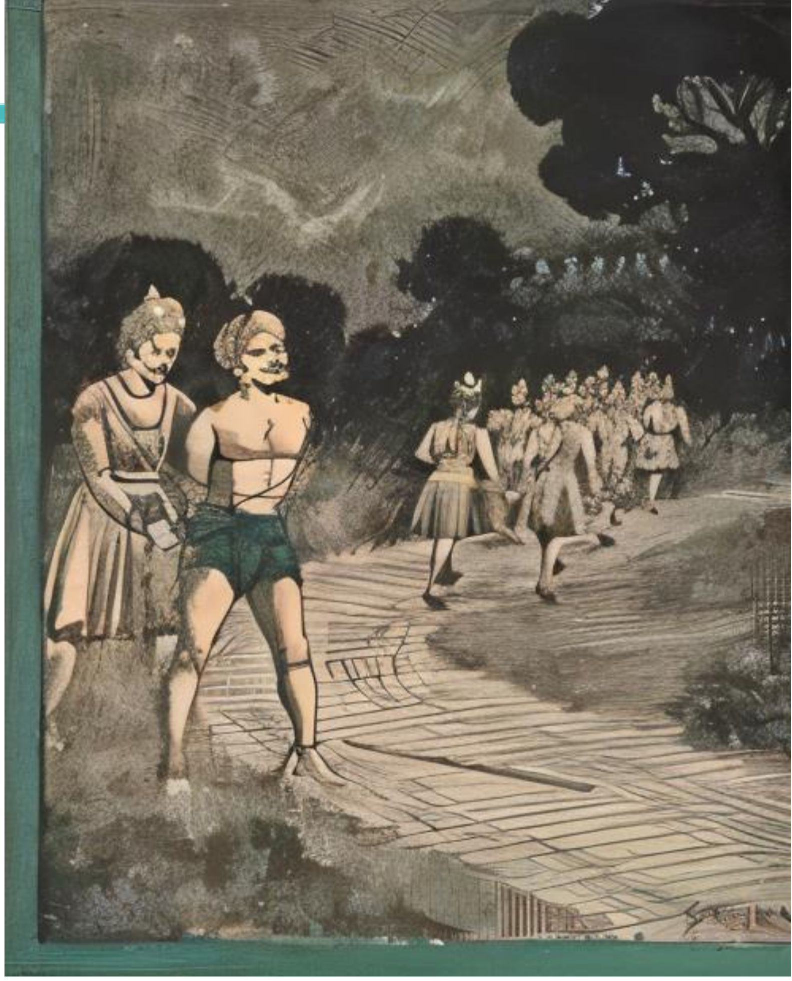
कुछ देर बाद, उसी रास्ते पर एक व्यापारी पैदल चला आ रहा था। पहिले की तरह चोरों का सरदार उसके रास्ते में आकर धमकाने लगा। पैसा दो नहीं तो

तुम्हारी जान।" वह व्यापारी बहुत ही जिद्दी और चालाक था। सरदार के जबाब में उसने बिना झिझके कहा- "हाँ मेरे पास कुछ पैसा जरूर है पर वह मेरा नहीं है।"

सरदार ने उसके जवाब को अनसुना कर दिया। तब व्यापारी अपने पास के रुपयों को उसके हाथ में रखते हुये चिल्लाने लगा। "शुरुमुट में छुपे हुये लोगों ! सुनो। मैं तुम्हारे सरदार के हाथ में हजार अशर्फियाँ रख रहा हूँ। तुम हरगिज़ धोखा मत खाना। बकायदा अपना अपना हिस्सा वसूल कर लेना।" व्यापारी को चिल्लाता देख, सरदार ने लट्ठ से उसे दो जमा दिये। चोट खाकर व्यापारी भागा और जाकर उसने एक धर्मशाला में शरण ली।

तब धर्मशाला में राजा के कुछ सिपाही और दारोगा बगैरह ठहरे हुए थे। व्यापारी ने अपना दुखड़ा उनको सुनाया। सिपाहियों ने कहा- "हमें दिखाओ वह कहाँ है। दस मिनटों में उसे पकड़ लेंगे।"

सब मिलकर चोरों वाले ईलाके में जा पहुँचे। सिपाही एक जगह छुप गये। व्यापारी आगे आगे चलता गया, उसके साथ दारोगा भी जा रहा



था। सिर्फ दोनों को ही आता देख चोरों के सरदार ने उन दोनों को रोका, जमीन पर लट्ठ मारते हुये कहा-"पैसा.... नहीं तो जान, देखते हो कि नहीं उन पेड़ों के पीछे हमारा गिरोह?"

दारोगा को तलवार चलाना आता था। उसका हृष्ट पुष्ट कसरती बदन था। सीधे आकर वह चोरों के सरदार पर कूद पड़ा। उसे नीचे गिराकर, जबर्दस्ती पकड़ लिया। "इसको तो मैं देख लूँगा। तुम जाकर झुरुनुट में जो इसके गिरोह के आदमी हैं, उनका हिसाब किताब करो।" दारोगा ने कहा।

कूदते फाँदते, चिल्लाते, शोर करते सिपाहियों ने पेड़ो के पीछे छुपे चोरों के गुट पर धावा बोल दिया। उनमें से एक भी हिला जुला नहीं। किसी ने मुकाबला नहीं किया। किसी ने भागने की भी कोशिश नहीं की। सिपाहियों के लट्ठे मारने पर भी जो जहाँ खड़े थे वहीं खड़े रहे।

यह जाँच पडताल करने पर कि वे कौन हैं, सिपाहियों को मालूम हुआ कि वे फूस के बने हुए थे। सिर्फ सिर पर, आदमियों की तरह बड़े बड़े पग्गड़ बाँधे हुए थे। उन सब को चोर की अक्लमन्दी पर आश्चर्य हुआ।

चूँकि आश्रम वहाँ से पास ही था, उन्होंने सोचा कि वहीं रात बिताई जाय। सब के सब वहाँ चले गये। पर देखने पर वहाँ कहीं स्वामी का पता न था। दारोगा के हुक्म के मुताबिक सिपाही आश्रम की खोज करने लगे। आश्रम में चोरी की चीज़ों का ढेर पड़ा था। उन सब को सिपाहियों ने बरामद किया। और बहुत कुछ खोज़ करने के बाद, दीवार पर चमकती हुई एक हाथ लम्बी दाढ़ी लटकती मिली। सब उसको आश्चर्य से देखने लगे।

चोरों का सरदार उनको देखकर कहने लगा-"क्यों भाई ? क्या आश्चर्य से देख रहे हो? वह मेरा कपट वेश है। उसी वेश में जब मैं मौन व्रत का पालन कर रहा होता हूँ, तो आप मुझ पर भेंट चढ़ाते हैं, मेरी पूजा करते हैं। और यह मेरा रात्री का वेश है और लोग मुझे इस तरह तव उपहार देते हैं। मेरा नाम है नीशीथानन्द स्वामी। आप लोगों ने अब मेरा भेद जान लिया है। अच्छा जाने दो। फिर एक और नाटक, फिर एक और वेश।" यह कह उसने एक विकट हँसी हँसी।

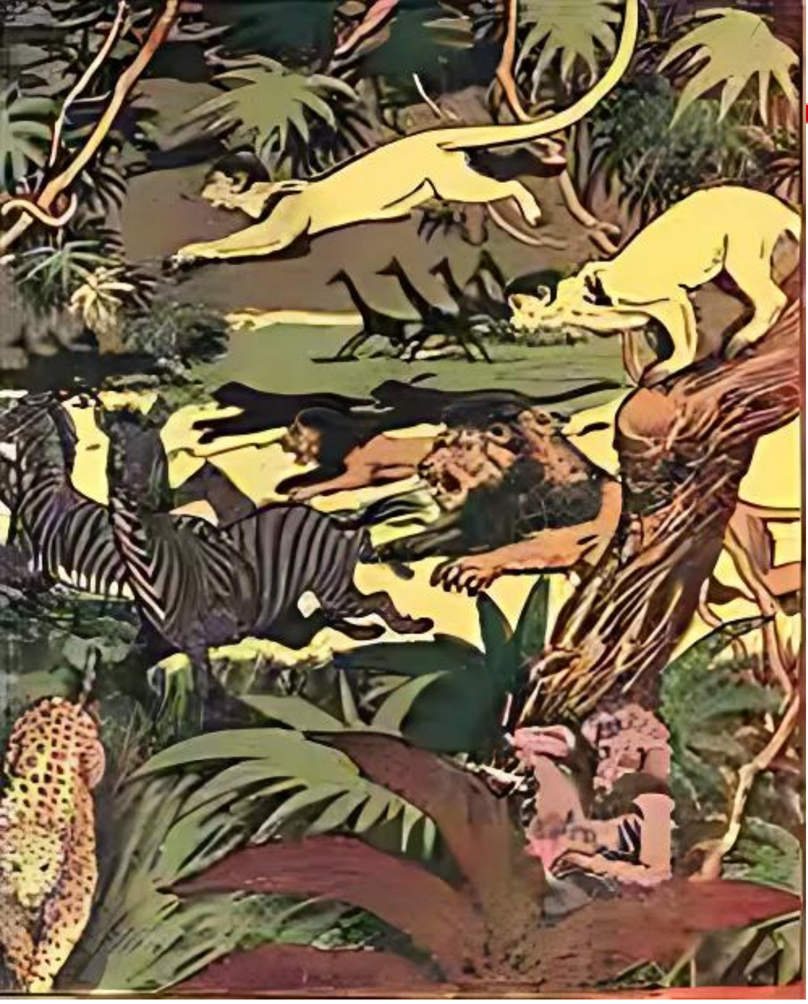





अग्नि पर्वत आग और धुँआ उगल रहा था। और धुएँ से सारा आकाश भर गया था। यह देख समरसेन और सैनिकों के भय और आश्चर्य की सीमा न रही।

जिस रास्ते पर उन्हे जाना था, ठीक उसी रास्ते पर यह ज्वालामुखी फूट पड़ा था। इसलिए दूसरा रास्ता खोज निकालने के लिए पीछे हटने को वे मजबूर हुए। समरसेन ने रास्ता निकाला। भय से काँपते हुए सैनिक चुपचाप अपने सेनानी के पीछे चल दिए। अब सब के सब पश्चिम की ओर जा रहे थे। मगर उनके जहाज पूर्वी किनारे पर ही रह गये थे। अब उन्हे मान्त्रिक और हिंस्र जन्तुओं के अलावा ज्वालामुखी का भी मुकाबला करना था। वे पूर्वी किनारे पर कैसे पहुँच सकेंगे ?

अग्नि पर्वत के फूट पड़ने से भूमि अब भी काँप रही थी। पर्वत से निकलता हुआ



धुँआ आकाश में छाया हुआ था। मानों यह काफी न हो, अब भूचाल के भी सङ्केत दिखाई देने लगे थे। समरसेन ने लम्बी आह भरते हुए कहा-"यह सिर्फ मन्त्रद्वीप ही नहीं है, भूकम्प और अग्नि पर्वतों का भी द्वीप है।" उसने अपना भय प्रकट किया।

पेड, पत्ते, खोहों के बीच रास्ता बनाते हुए समरसेन और उसके सैनिक आगे बढ़ते जाते थे। मगर अग्नि पर्वत से बहता 'लाबा' तराई पर था। चारों तरफ से पशु-पक्षी चिल्लाते भागते जाते थे। यह देख कर समरसेन और अधिक घबरा गया।

इससे पहिले कि गरमा-गरम लावा अलंघ्य नदी के रूप में बहने लगे, समरसेन किसी ऊँची जगह पर पहुँच जाना चाहता था। नहीं तो सिर्फ लावा से ही खतरा न होगा, बल्कि भयभीत जानवरों से भी मुकाबला करना पडेगा।

समरसेन अपने ही ढङ्ग से सैनिकों को दाढ़स बँधाता हुआ आगे आगे बढ़ता जाता था। यकायक उसे एक अजीब नजारा दिखाई दिया। उसे सन्देह होने लगा-"यह स्वप्न है या सच है?" परन्तु दो चार कदम आगे जो बढ़ाये तो उसे मालूम हो गया कि जो कुछ वह देख रहा है, वह सच ही है।

समरसेन ने सैनिकों को सावधान रहने के लिए कहा। और वह निश्चेष्ट हो, खड़े-खड़े एकटक देखता रहा। ठीक उसके सामने - पेड़ की टहनी पर से कोई आदमी उलटा लटक रहा था- पैर ऊपर सिर नीचे। मालूम नहीं जिन्दा था या मुर्दा। हाथ पैर जञ्जीरों से बँधे हुए थे। उसकी शक्ल-सूरत, जन्तुओ के खाल के पहनावे को देखकर लगता था कि वह कोई जङ्गली आदमी हो।

सेनानी के साथ साथ सैनिक भी निश्चेष्ट हो वह अजीब नजारा देख रहे थे। उन्हे

पता लग गया कि उस मन्त्र द्वीप में पशु और मान्त्रिकों के सिवाय मनुष्य भी रहते थे। समरसेन सम्भला और सोचने लगा। उसने अपने से पूछा- "इस आदमी को इतनी सख्त सजा देना बाला कौन हो सकता है?"

"क्या हुआ अगर वह जङ्गली जाति का आदमी है? है तो आदमी ही। यह बात तो तय हो गई कि इस द्वीप में मनुष्य भी हैं। अब यह मालूम करना है कि ये रहते कहाँ हैं ? अगर यह मालूम हो गया तो हमें आगे-आगे जाकर बहुत मदद मिलेगी।" समरसेन ने कहा। सैनिकों ने कुछ न कहा। उनको समरसेन की बातें न जँची। वे तो इस फिराक में थे कि कैसे जल्द से जल्द पूर्वी किनारे पर पहुँचा जाय और अपने राज्य को वापिस जाया जाय। वे सोच रहे थे। हम अपना रास्ता भला क्यों न देखे, हमें क्या पड़ी है कि इन आदमियों के घर बसेरे को ढूँढ़े। फालतू तकलीफ है। सैनिकों को मौन खड़ा पा, समरसेन भी कुछ न कह पाया। उनकी बात को वह ताड़ गया। और तो और वे ही नहीं, समरसेन भी चाहता था कि जैसे तैसे उस भयङ्कर जगह से बाहर





जा निकले। मगर कैसे ? रास्ता कहाँ है ? समरसेन थोड़ी दूर और आगे चला। उल्टे लटके हुये उस आदमी को गौर से देखा। उसके शरीर पर कोई धाव न दिखाई दिये। समरसेन ने अनुमान किया कि इसके दुश्मनों ने इसको यहाँ इस तरह लटका दिया होगा और भूख और प्यास के मारे यह मर गया होगा।"

उस अभागे को देख कर सब को दया आई। परन्तु समरसेन सोच रहा था-"इसमें जरूर कोई न कोई गूढ़ रहस्य है। इसे कैसे मालूम किया जाय ? हाँ, एक बात तो साफ है कि इस द्वीप में कुछ ईलाका मनुष्यों के रहने लायक भी है। तो इसके मरने के कारण पता लगाने चाहिये।" समरसेन में इस रहस्य को मालूम करने की इच्छा प्रबल होती गई।

इस बीच, कुछ दूर पर समरसेन की नजर एक चीज़ पर पड़ी। झट वह वहाँ गया। उस चीज़ को हाथ में उठा लिया। वह एक टूटा हुआ तुम्बा था । तुम्बे का मुख जरा तङ्ग था। और उसके मुख पर एक रस्सी बन्धी हुई थी।

उस टूटे हुए तुम्बे को शायद वहाँ कोई फेंक गया होगा। जाँच करने पर ऐसा लगा जैसे लोग उसे सफर में पानी ले जाने के लिये इस्तेमाल करते हो।

"आह, यह सब कुण्डलनी देवी की मेहरबानी है।" समरसेन ने सोचा। और आकाश की ओर मुँह ऊँचा कर, नमस्कार किया।

सैनिक यह अनुमान न कर पाये कि उनका सरदार ऐसा क्यों कर रहा है। उनके आश्चर्य को समझकर समरसेन ने कहा-"घबराओ मत। हम मनुष्यों के किसी बस्ती के आस पास ही मालूम होते हैं। इस अमागे को मनुष्यों ने ही इस तरह लटकाया होगा। फिर यह जो तुम्बा पड़ा है

इसे आदमी ही उपयोग में लाते हैं। इसलिये अगर हम होशियारी से खोजे तो हम पता लगा सकेंगे कि ये लोग किस रास्ते से यहाँ आए और किस रास्ते से यहाँ से गये।" समरसेन की आवाज में गम्भीरता थी।

तुरन्त सैनिक ढूँढ़ने लगे कहीं उस ईलाके में आदमियों के चलने के चिन्ह हैं कि नहीं। उनकी मेहनत सफल हुई। थोड़ी देर में ही उन्होंने चिन्ह हूँढ़ निकाले। हरी घासवाले पगडण्डी पर पड़े पग चिन्ह देख कर उन्होने अनुमान लगाया कि उस तरफ से कई आदमी.... झुन्ड के झुन्ड, पैदल गये होंगे।

सैनिक जोश के साथ उस पगडण्डी पर चलने लगे। एक घण्टे बाद वे एक ऊँची जगह पर जा पहुँचे। वहाँ खड़े होकर चारों तरफ देखने लगे। अग्नि पर्वत अब भी अङ्गारें उगल रहा था। मौत के डर से जङ्गली जानवर अब भी भाग दौड़ कर रहे थे। उनकी चिंघाड चिल्लाहट अब भी सुनाई पड़ रही थी। कहीं कहीं, दूरी पर जङ्गल के जङ्गल जलते हुए भी दिखाई दिये।

फिर वे सिर नीचा कर आगे चलने लगे क्यों कि अभी तक उनको अपनी मञ्ज़िल का पता न था।



उनको अब भी डर लग रहा था कि कहीं मान्त्रिक और जङ्गली जन्तु उनके सामने न आ पड़ जाय। सब मन ही मन कुण्डलनी देवी का जप कर रहे थे। अपनी अपनी तलवार, कटार साध कर चल रहे थे। कुछ देर बाद वे एक नदी के किनारे आ पहुँचे। वह नदी ऊँची नीची जमीन पर कूदती फाँदती जाती थी।

नदी के बीचों बीच बड़े बड़े पत्थर थे। उन पत्थरों के चारों तरफ घूमघाम कर नदी कई धाराओं में कोलाहल करती बहती जाती थी। समरसेन द्विविधा में पड़ गया कि उस नदी को पार किया जाय कि नहीं? जब तक



यह न मालूम हो कि जाना कहाँ है तब तक इसमें फर्क ही क्या है अगर हम नदी के इस पार हैं या उस पार?

उन्होने जाना था पूर्वी किनारे की तरफ। परन्तु ज्वालामुखी के फूट पड़ने के कारण वे पश्चिमी किनारे की ओर जा रहे थे। यह बात तो जरूर तय थी। इतने में एक सैनिक ने कहा-"सेनानी! इस नदी को पार करना उतना आसान काम नहीं है।"

"हाँ, हाँ" तुरन्त जवाब देकर समरसेन फिर सोचने लगा। अगर कोई लम्बा-सा ताड़ का पेड़ मिल जाय तो इस नदी को पार करना कोई ऐसी बड़ी बात नहीं है, समरसेन सोच रहा था। यह उपाय उसने अपने सैनिकों के सामने भी रखा-"हाँ, तो इस जङ्गली ईलाके में ताड़ मिलेंगे कहाँ ?"

यह उपाय सुन कुछ सैनिक एक पेड़ के पास जा उसपर लिपटी बेलों को तोड़ लाये और उनको मिला जुलाकर खासी मोटी रस्सी बट ली। उस रस्सी का एक छोर नदी के किनारे वाले पेड़ से मजबूती से बाँध दिया और दूसरा छोर पकड़कर एक एक करके उसका सहारा ले, उन पत्थरों पर पैर धरते धरते वे उस नदी को पार करने लगे।



देखते-देखते वे नदी के उस पार पहुँच गये। समरसेन सैनिकों को हुक्म देता हुआ एक ऊँचे टीले पर चढ़ गया। टीले के आस-पास अधिक पेड़ पौधे न थे। परन्तु थोड़ी दूर पैदल जाने पर, उस तरफ घना जङ्गल था। पेड़ ही पेड़ थे।

समरसेन उस ऊँचे टीले से नीचे उतरा। पद-चिन्ह अब भी दिखाई दे रहे थे। सब पेड़ों के बीच पहुँच गये। उन लोगों का पेड़ों के बीच जाना था कि भयङ्कर धुङ्कार की आवाज जोर से सुनाई पड़ने लगी। ये दोनों एक ही साथ गुज़री।

मारे डर के सैनिक अपने सरदार की ओर ताकने लगे। समरसेन ने एक छलाँग मारी और पेड़ पर जा चढ़ा। सैनिकों ने भी ऐसा किया। और एक क्षण बाद, उस प्रदेश को बुरी तरह रोंदता चिंघाड़ता हाथियों का झुण्ड उनके सामने से आता हुआ दिखाई दिया।

जङ्गल की आग से बच निकलकर हाथी भागे जा रहे थे। उनके पैरों की चोट से भूमि हिल रही थी। छोटे-छोटे पेड़ पौधे घास फूस उनके पैरों के नीचे टुकड़े टुकड़े हो रहे थे। वह सारा का सारा ईलाका उनके कारण भयङ्कर लग रहा था।

पेड़ों पर चढ़े हुये समरसेन और उसके सैनिक हाथियों के झुण्ड को देखकर दिल थाम कर बैठ गये। वे बहुत डर गये थे।

वे सोच रहे थे-"अगर एक घड़ी भी देर होती तो इन हाथियों के पैरों के नीचे दव-दबाकर चटनी हो आते। भाग्य अच्छे थे। पास में ही पेड़ थे, चढ़ गये और शामत टली।"

थोड़ी देर में हाथियों का वह झुण्ड उस ईलाके को पार करके चला गया। परन्तु पेड़ों पर से उतरकर आने केलिए वे अब भी घबरा रहे थे।

कुछ भी हो; यद्यपि कलेजा बुरी तरह धक धक कर रहा था, समरसेन और उसके सैनिक साहस करके नीचे उत्तर ही आये। छोटी-मोटी आहट पर भी वे डर से काँप जाते थे। उन्होने फिर पद चिन्ह ढूँढने की कोशिश की। पर वहाँ उनका नाम निशान भी न था। हाथी के पैरों के नीचे रौंदी हुयी बह जमीन सारी कि सारी एक ही जैसी लगती थी। अब क्या किया जाय ? (अभी और है)





# फाँसी की सजायें

पुराने जमाने में प्रज्योत नाम का राजा पवनपुर में राज्य करता था। उसके दरबार में बड़े बड़े पण्डित, कवि और गवैया रहते थे। हँसी मज़ाक के लिए तो राजा जान की बाजी तक लगा देता था। प्रज्योत के पास 'विकविक' नामक विदूषक भी था। राजा के जीवन का दारोमदार उसी विदूषक पर था। वह उसे बहुत चाहता था।

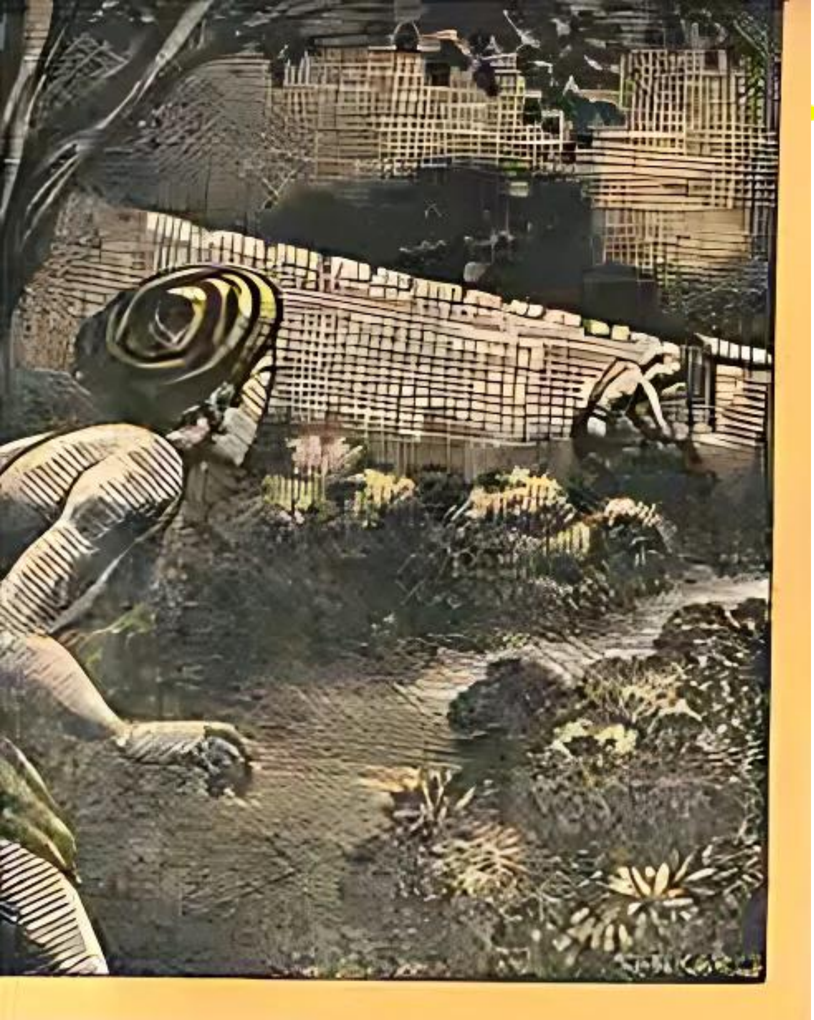
विकविक कोई मामूली आदमी न था। हँसाने वाली बातें और अद्‌भुत कहानियाँ वह आसानी से बना सकता था। वह कुबड़ा था। ईसलिए उसके बिना मुख खोले ही, लोग उसकी टेढी-मेढी, गिरती पड़ती चाल को देखते ही हँस पड़ते थे।

अगर महाराज की मेहरबानी की जरूरत हो तो यह आवश्यक था कि विकविक की शरण ली जाए। पर विकविक को खुश करना कोई ऐसी बड़ी बात न थी। उसे पीने का बहुत शौक था; यानी वह खाऊ था। अगर उसको अच्छी तरह, पेट भरके खाना खिला दिया जाय तो राजा के पास कोई भी अपना उल्लू सीधा कर सकता था।

एक बार एक नौजवान ने विकविक को भोजन का न्योता दिया। वह दरबार में नौकरी की तालाश में था। विकविक ने उस दिन सवेरे उपवास रखा और रात को दावत के लिए गया। दावत में बढ़िया बढ़िया अनेकों माँस परोसे गये थे।

उन पकवानों को जल्दी जल्दी निगल जाने की वजह से, विकविक के गले में एक छोटी-सी हड्डी अटक गई। मारे डरके उसकी आँखे सफेद हो गई। यह देख नौजवान भी बुरी तरह घबरा गया।

परमेश्वर राव



महाराज के लङ्गोटिया यार पर अगर कोई दिक्कत आई, वह नौजवान सोचने लगा, उसका सर धड़ से अलग कर दिया जाएगा।

तुरन्त बह नौजवान विकविक को लेकर पास वाले वैद्य के पास गया। वैद्य के घर के दरवाजे बन्द थे। जो हुआ सो अच्छा हुआ, यह सोचकर उस नौजवान ने बन्द दरवाजे के सहारे विकविक को खड़ा कर दिया और चिल्लाने लगा "भिषगराजा, धन्वन्तरी.... जान पर आ पड़ी है।" उसका चिल्लाना सुन वैद्य अन्दर से घबराता हुआ आया और दरवाजा खोल दिया। दरवाजा खुलते ही वह नौजवान वहाँ से चम्मत हो गया। दरवाजा के खुलने पर, विकविक जो किवाड़ के सहारे खड़ा था, अन्दर जा गिरा।

वैद्य का दिल थम-सा गया। उसने सोचा शायद उसी की लापरवाही से ही दरवाज़े के सहारे खड़ा रोगी गिर गया है। देखने पर मालूम हुआ कि उसकी साँस नहीं चल रही है। जाने कौन है यह सोच चिराग की रोशनी में देखता क्या है कि वह राजा का विदूषक है। वह घबराया कि वह मौत से न बच सकेगा।

ऐसे काम न चलेगा, यह सोच वैद्य ने विकविक को अपने कन्धे पर डाला और पास वाले व्यापारी के घर की दीवार को लाँघा और विकविक को पौधों की क्यारी में छुराकर स्वयं धीरे से खिसक गया।

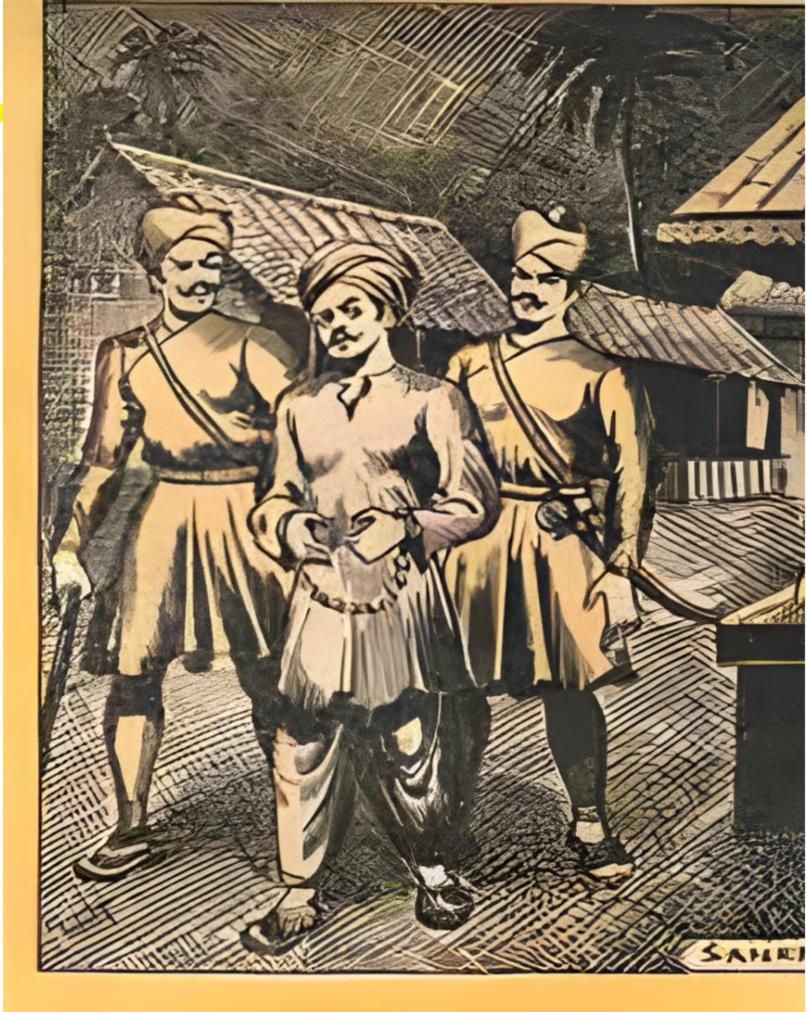
चुँकि उन दिनों चोरों का डर ज्यादा रहता था, व्यापारी खुद रात भर पहरा दिया करता था। नजदीक लट्ट रखे, अमरूद के पेड़ के नीचे वह ऊँघ रहा था। उसकी आँखे ज्यों ही खुली तो पौधों के पास एक आदमी की शकल दिखाई दी।

"अरे चोर.... तू ही क्या हमारी सब्जियों को चुरा ले जाया करता था? अब आ गया है तेरा वक्त, देखता रह।" कहता-कहता धोमे धीमे पेड़ को आड़ में से होता हुआा उसने उसके सिर पर लट्ठ से दो जमा दिए। दीवार के सहारे खड़ा विकविक चोट खाते ही लिपटी चटाई की तरह नोचे गिर पड़ा। चोट लगने पर भी उसने चूँ तक न की। व्यापारी को सन्देह हुआ; उसने उसका कन्धा पकड़ कर झकझोरा।

वह हिला जुला नहीं। लालटेन लाकर शकल देखी। उसे मालूम हो गया कि वह कौन था। उसी की लट्ठ की चोट से वह बेहोश हो गया है; यह खयाल कर व्यापारी का खून पानी हो गया।

काफी देर तक सोचने के बाद, व्यापारी ने विकविक को कन्धे पर उठा, सामने वाले घर के दरवाजे के सहारे खड़ा कर दिया और स्वयं चलता हुआ।

उस घर का मालिक सवेरे सवेरे कहीं बाहर से आ रहा था। दरवाजे के पास किसी को खड़ा पा उसने चोर का अनुमान किया। गला पकड़कर विकविक को जोर से




धक्का दिया। उसी समय कुछ सिपाही जो वहाँ पहरा दे रहे थे, उस तरफ आए। उस घने अन्धेरे में उन्हे ऐसा लगा कि कोई दो व्यक्ति आपस में भिड़े हुए हैं और उनमें से एक नीचे गिरा हुआ है।

उन्होंने जल्दी जल्दी आकर नीचे पड़े आदमी को उठाया। उठाते ही वे पहचान गए कि वह विकविक है। उन्होंने उस घर के मालिक को तुरत गिरफ्तार कर लिया। सवेरा हुआ। उस व्यक्ति को हत्यारा समझ कर राजा के सामने पेश किया गया। राजाने सुनवाई के बाद उसे फाँसी की सजा दे दी।

चौराहे पर फ़ाँसी लगाने के लिए तैयारियाँ होने लगी। विकविक का कत्ल करने वाला कौन हो सकता है यह देखने के लिए सारा का सारा शहर उमड़ उठा। आखिर मुलज़िम को फाँसी के तख्त पर चढ़ाने के समय एक नौजवान भागता भागता आया। "महाराज में दोषी हूँ। विकविक की मृत्यु मेरी बजह से हुई है।" उसने दावत वाली सारी बात सुना दी।

अच्छा, राजा ने हुक्म दिया कि उस व्यक्ति को छोड़ दिया जाय और उसकी जगह इस नौजवान को फाँसी पर चढ़ा दिया जाय। इस बीच, वैद्य हवा से बात करता भागता-भागता आया और उसने भी अपनी कहानी सुनाई और कहा कि वह ही सचमुच गुनाहगार है। तब राजा ने नौजवान को छुड़वा दिया और वैद्य को फाँसी पर चढ़ाने के लिए कहा। वैद्य को फाँसी के तख्त पर चढ़ाया ही जा रहा था कि वह व्यापारी हाँफता हाँफता आया और कहा-"महाराज ! मैं ही सचमुच हत्यारा हूँ।"

यह सब देखने पर सब को आश्चर्य हुआ। तुरन्त मन्त्री ने राजवैद्य को बुलाकर विकविक की जाँच करवाई। उसकी नब्ज अभी चल रही थी। एकदम उसको चिकित्सालय ले जाया गया। वहाँ परीक्षा कर उसके गले में से हड्डी का टुकड़ा निकाला गया। विकबिक 'अरे बाप रे बाप' कइता हुआ उठ बैठा।

इस तरह मरते मरते बाल-बाल बचने पर मन्त्री ने विकविक से कहा-"विकविक ! अच्छे भोजन को जरूरत के मुताबिक ही खाया करो। नहीं तो इसी तरह फजीहत होगी।" इस पर विदूषक विकविक ने कहा-"क्या हुजूर! यह भी मुझे कहने की जरूरत है?" और ठठा मारकर हँसने लगा।





# मनुष्य की धोखेबाजी

अच्छा तो सुनो। एक देश था और वह देश घने जङ्गलों से भरा हुआ था। जङ्गलों के नज़दीक गाँव-वस्ती वगैरह थे। ऐसे किसी गाँव में एक गरीब परिवार रहा करता था। बहुत दिनों बाद उन्हें एक लड़का पैदा हुआ। क्योंकि वह सर्पराज की कृपा से जन्मा था, माँ बाप ने उसका नाम 'नागदत्त' रखा और बड़े लाड़ प्यार से वे उसका लालन पालन करते थे।

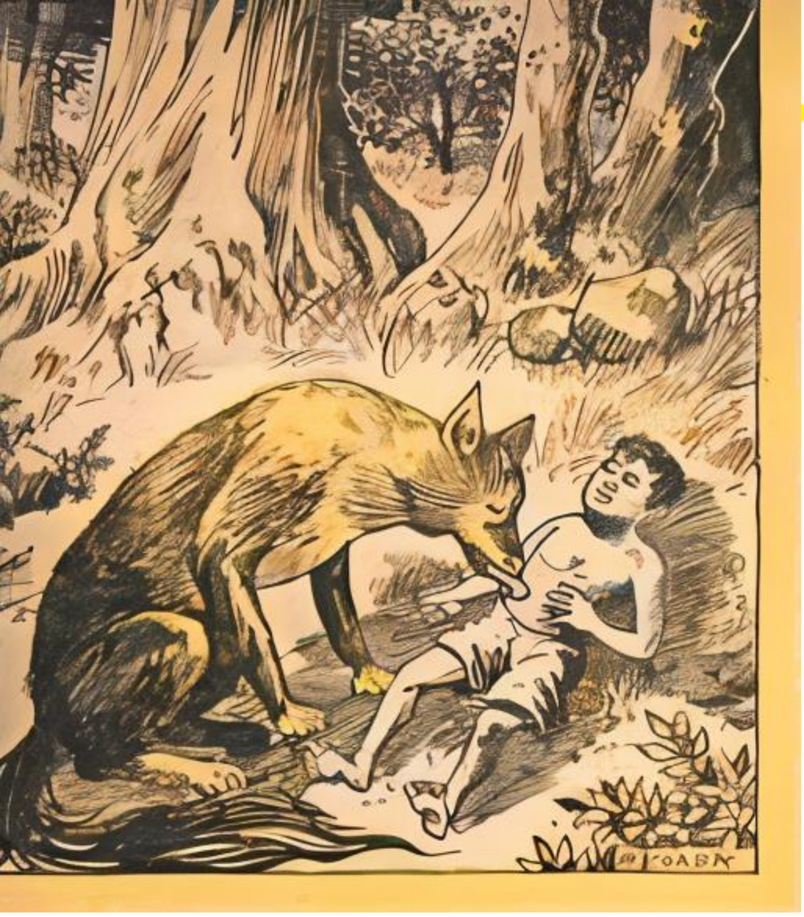
वह परिवार सबेरे से शाम तक जङ्गल में ईन्धन बटोरता रहता और अन्धेरा होते होते उन्हें ढोकर घर वापिस आ जाता। वे कभी भी अपने इकलौते लड़के को अकेला नहीं छोड़ते थे। जङ्गल भी साथ ले जाते थे।

जब वे ईन्धन के तलाश में जाते तो उनका लड़का भी पेड़ पौधों के साथ खेलता रहता। वह उस उम्र में भी जङ्गल के जानवरों को जानता था। लोमड़ी, हरिण, जङ्गली सूअर, भेडिया इन सब को वह दूर से ही पहचान लेता था।

एक दिन नागदत्त पेड़ों की झुरमुट में खेल रहा था। दोपहरी में, देखते देखते आसमान पर काले काले बादल छा गये। और थोड़ी देर में ही तूफान चलने लगा। तूफान के झोंके में खेलता हुआ नागदत्त कहीं दूर जा पड़ा।

नागदत्त के माँ बाप हो हल्ला करते हुए उसको इधर उधर ढूँढ़ने लगे। पर कहीं उसका पता न लगा। नागदत्त दूर तो जा पड़ा; पर उसे कोई चोट न लगी। मगर वह घबरा जरूर गया। जहाँ वह पड़ा था, वहाँ से उसने चारों तरफ देखा। सामने, पेड़ों की ओट में से, दो अङ्गारे-सी आखें उसकी तरफ देख रही थीं। उसने तुरन्त पहचान लिया कि वे भेडिये की आखें थीं।

सुशीला देवी



वह सेच रहा था कि वहाँ से उठकर चले कि भेड़िया एक ही छलाँग में उसके पास आ पहुँचा। डर के मारे उसने आँखें मूँद ली।

बह भेडिया भी चुप न बैठा। अपनी नर्म जीभ से उसके सारे शरीर को चाटने लगा। घबराकर जब उसने आखें खोली तो उसे एक, मादा भेडिया दिखाई दी। अपने को चाटता देख उसे हौसला हुआ।

होते होते, वह भेडिया नागदत्त को बहुत प्यार करने लगा। उसके मातृप्रेम का तो बयान ही नहीं किया जा सकता। अफसोस कि उसके बच्चों को शिकारी लोग उठा ले गये थे। इस वजह से नागदत्त को ही वह मादा भेडिया पुत्र की तरह पाल पोस रही थी। वह नागदत्त के लिए हर तरह के फल फूल, माँस वगैरह ढूँढ ढाँढ कर लाया करती थी। उसके दिए हुए आहार को खाना और भेडियों के बच्चों से खेलना कूदना, यही नागदत्त का काम था। इस तरह कुछ दिन गुजर जाने के बाद, नागदत्त में भी, भेडिये की चतुरता, तेजी, चुम्ती आदि, आ गई। उनके साथ वह भी इधर उधर जङ्गल में घूमने फिरने लगा।

एक रोज़ आहार के लिए वह भेड़ियों के साथ एक गाँव के पास गया। साथ आये हुए मेडिये गाँव में जाकर मुर्गों और बकरी के बच्चों को उठा लाये। वहाँ आदमियों को देखते ही नागदत्त के सामने अपने बचपन का चित्र आ गया, वह अपने माँ बाप को याद करने लगा।

नागदत्त ने एक घर के पास जा किवाड़ खटखटाया। अन्दर से उस घर के मालिक की स्त्री बाहर आयी। उनको देखते ही नादान नागदत्त ने, जिसे मनुष्यों की धोखेबाजी का ज्ञान न था, पूछा-"क्या आप लेग ही मेरे माँ बाप हैं?"

घर की मालकिन ने कहा-"अरे हाँ। तुम्ही हमारे बेटे हो। कितने दिनों बाद दिखाई दिये मेरे लाल।" झूठा प्रेम दिखा कर उसे उन लोगो ने अपना लिया। माँ बाप से मिल जाने का उसे भी सन्तोष हुआ।

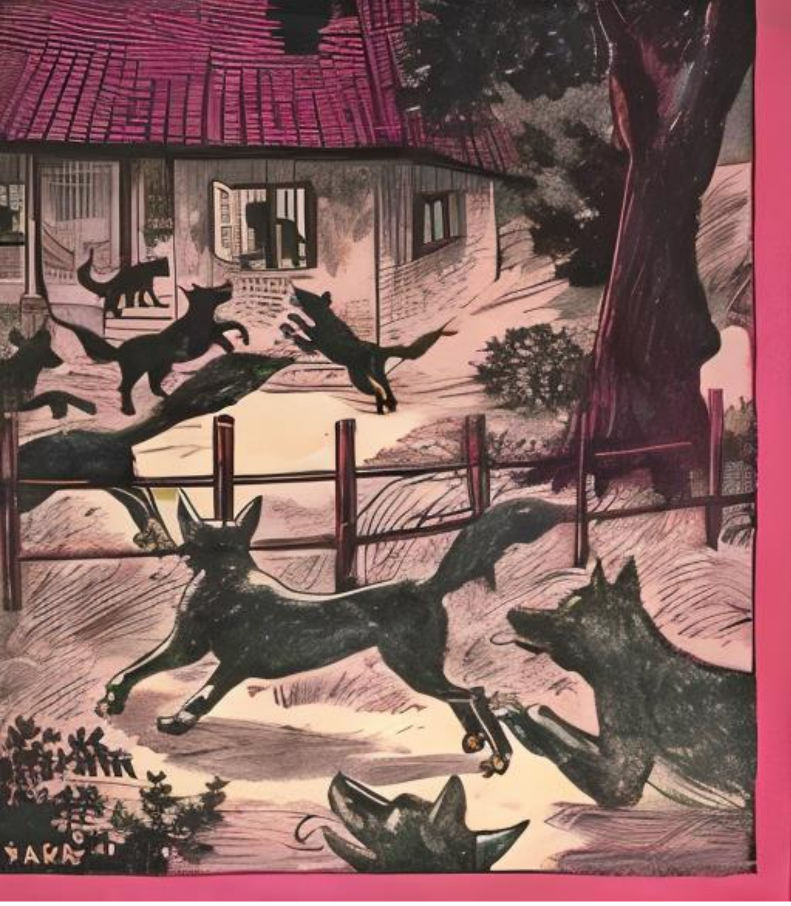
अगले दिन उन लोगों ने नागदत्त को खेत में मिट्टी खोदने का काम दिया। दुपहरी तक वह काम करता रहा। फिर सुस्ताने के लिए वहाँ एक पेड़ के नीचे जाने के लिए तैयार हुआ। इस बीच उसको पास बाले झोपड़ी में से किसी की बातचीत सुनाई दी। अपने भेडिये की कानों की तरह तेज कानों को उस तरफ मोड कर उनकी बातचीत वह सुनने लगा।

"तू तो बहुत ही अक्लमन्द है। वह तो इस्पात जैसा हट्टा कट्टा लड़का है। अब हमें काम करने की जरूरत नहीं। वह ही सब कुछ कर देगा।" स्त्री ने कहा। पति ने हँसते हँसते फहा-"तो तुमने क्या समझ रखा है? उससे क्या कह देता ? क्या हमारा लड़का कोई दूसरा है? काम बन आयेगा। हमारे खाने पीने में बाद बचे खुचे दो चार टुकडे उसको भी दे देना। तसल्ली से पड़ा रहेगा।"



उनकी ये बातें सुनकर और यह जानकर कि उसको उन्होने धोखा दिया है। उसने एक और गाँव जाने की ठानी। साँझ होते होते वह किसी दूसरे और गाँव को पहुँच भी गया। वहाँ एक घर के दरवाजे पर किसी पति पत्नी को बैठा पाया। उनको देखकर फिर उसने नादानी से पूछा- "क्या आप ही मेरे माँ बाप हैं ?"

वे पति पत्नी चकित हुए, फिर यकायक सम्भल गये। पति ने पत्नी को ईशारा कर कहा-"हाँ, हाँ, बेटा, तुम हमारे ही लड़के हो। कितने दिनों बाद लौटे हो।" उसने नागदत्त को गले लगा लिया।



"ये सचमुच मेरे माँ बाप नहीं है।" यह जानकर नागदत्त दूसरे गाँव की ओर रवाना हुआ। पर वे लोग उसे छोडनेवाले नहीं थे। उन्होंने नागदत्त को पकड़ लिया और एक कमरे में बन्द कर ताला लगा दिया। "यहाँ मजदूरों का मिलना बहुत मुश्किल है। जब तक तू काम करने के लिए नहीं मानेगा तब तक तुझे हम पानी भी न देंगे।" उसने दाँत पीसते हुए कहा।

नागदत्त ने समझा शायद यह सब कुछ सच है। उस रात को उन दोनों ने उसे इधर उधर की बातें सुनाई और कहा-"बेटा! कल से खेती बाड़ी का काम तुम्ही देखना। हम लोग बहुत गरीब हैं। सारा काम काज तुम्ही देखते जाओ।" उसको खाने के लिए दो चार रूखे सूखे रोटी के टुकड़े दे दिये ।

मगर उस रात को नागदत्त के लेट जाने के बाद, पति पत्नी हँस हँस कर, अच्छे अच्छे शाक, पकवान का खाना खाने लगे जो नागदत्त को मालूम हो गया। उसके कान और नाक, भेडिये की तरह वहाँ होते ध्वनि को, और भोजन के गन्ध को, बखूबी पहचान गये।

दिन भर नागदत्त कमरे में ही पड़ा रहा। रात होते ही ठीक भेडिये की तरह चिल्लाने लगा। उसका चिल्लाना सुन, पास के जङ्गल में रहनेवाले भेडियों के झुण्ड के झुण्ड आ गए और उस मकान को चारों तरफ से घेर लिया। घरवाला यह देख डर गया और नागदत्त से माफी माँगकर उसे छोड़ दिया।

चाहे कुछ भी हो, नागदत्त ने अपने माँ बाप से मिलने का निश्चय किया और वहाँ से चल पड़ा। घूमता फिरता एक और गाँव जा पहुँचा। वह एक घर के सामने किसी पति पत्नी को देखा। वे एक पेड़ के नीचे बड़े अफ़सोस में बैठे हुए थे। नागदत्त

सीधे उनके पास जाकर गिड़गिड़ाता हुआ बोला-"क्या आप ही मेरे माँ बाप हैं?" वे दोनों उसकी तरफ देखने लगे जैसे कुछ याद आगया हो।

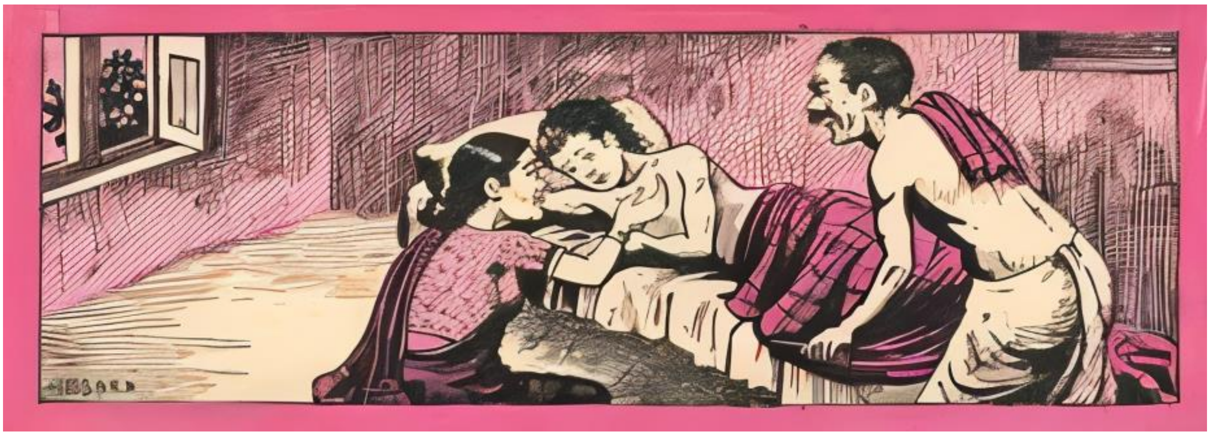
"बेटा, हमारा लड़का तूफान में हमसे दूर हो गया था। तू सचमुच हमारे लड़के की तरह ही है। हम ही तेरे माँ बाप हैं।" कहते कहते उन्होने नागदत्त को गले लगा लिया। मगर नागदत को विश्वास न हुआ और उसने भेडियों की चाल चलने की ठानी।

उस रात को जब माँ ने भोजन परोसा तो उसने कहा कि उसकी तबीयत खराब है और खाने से इनकार कर दिया। सवेरे माँ के उठाने पर उसने बहाना किया कि "वह बहुत कमजोरी अनुभव कर रहा है और वह काम न कर सकेगा।"

ये बातें सुन माँ को बहुत आश्चर्य हुआ। अपने पति को बुलाया। दोनों नागदत्त के पास गये और पुचकारते हुए कहा-"बेटा। तुम तो अभी बच्चे हो। यह तो पढ़ने लिखने की और खेलने कूदने की उम्र है। हम तुम्हारे लिए ही तो काम करते हैं।"

तब नागदत्त को ठीक तरह मालूम हो गया कि वह फिर अपने माँ बाप के पास आ गया है। तब से, माँ बाप की आज्ञा का पालन करता हुआ, बड़े ध्यान और परिश्रम से उसने पढ़ाई शुरू कर दी। परन्तु नागदत्त उस भेडिया माँ को, जिसने पाल पोस कर उसे बड़ा किया था, पूरी तरह न भूल सका। अन्धेरी रात में, जब कभी वह गाँव के बाहर जङ्गल में भेडियों को चिल्लाता सुनता तो उसे नींद न आती।

यह सोचकर कि उन चिल्लाने वाले भेडियों में उसकी माँ भी होगी, उसके आखों में आसू आ जाते थे।






एक गाँव में एक मछियारा रहा करता था। वह बहुत अच्छा आदमी था। मगर उसकी पत्नी बहुत ही मूर्ख और लोभी थी।

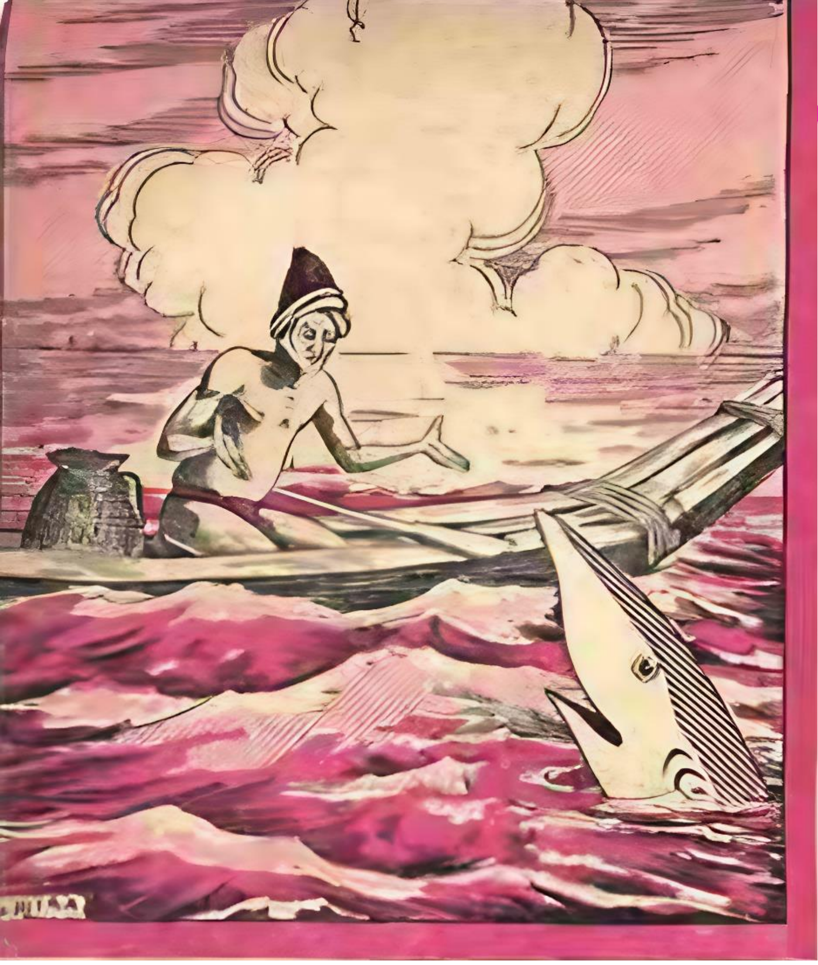
मछियारा अपनी पत्नी के साथ फूस के एक झोपड़े में रहता था। वह झोपड़ा एकदम पुराना और गिरने को तैयार था। वे लोग चाहते थे कि छप्पर फिर से डलवा लिया जाय। परन्तु उनके पास पैसा न था।

एक दिन, रोज़ की तरह बासाँ भात खा, जाल पकड़, समुद्र की ओर वह चला। सवेरे से जाल फेंकता रहा, पर दोपहर तक एक भी मछली न मिली। साँझ हो गई। वह सोच ही रहा था कि घर वापिस चला जाय कि उसके जाल में कोई चीज़ फँसी सी लगी। पर जाल इतना भारी हो गया था कि वह पहले खींच न पाया। फिर जैसे तैसे, मरते जीते जाल को खींच ही लिया।

देखता क्या है कि जाल में एक बहुत बड़ा मछली फँसा हुआ है। मछियारे की खुशी की कोई हद न रही। वह मछली मनुष्यों की भाषा में गिड़गिड़ाने लगा। "ओ मछियारे ! मैं मछली नहीं हूँ। मैं एक राजकुमार हूँ। एक पिशाच ने जादू टोना कर मुझे मछली बना दिया है। मुझे पकड़ने से तुझे क्या फायदा? इसलिये मुझे छोड़ दो।"

मछली को बातें करता देख मछियारा चकित हो गया। फिर उसको पानी में छोड़ खाली हाथ हिलाता हिलाता यह घर वापिस आ गया। घर जाते ही, पत्नी ने पूछा- "क्यों; आज कुछ मिला नहीं ?"

नारायण लाल



उसने सारी घटना को जैसे वह गुज़री थी वैसे सुना दिया।

"उसे तू राजकुमार समझ रहा है न? फिर तूने उससे कुछ माँगा नहीं ?" पत्नी ने पूछा।

"नहीं तो।" मछियारे ने जवाब दिया।

"छः। तुम तो एकदम नादान हो। यह मालूम होने पर कि वह राजकुमार है, तो उनसे बिना कुछ माँगे ही, उन्हें यूँहि क्या कोई छोड़ देता है? जाओ, और उनसे माँगो कि हमारी झोपड़ी को नया बना दे।" पत्नी ने कहा। "मछली तो चला गया, अब मुझे फिर कहाँ मिलेगा ?" वह मछियारा फुसफुसाने लगा।

"हूँ। यह क्या? जहाँ तुझे वह मछली दीखा था ठीक वहाँ फिर जाओ और उस मछली को बुलाओ। अगर तुझे माँग ने में कुछ आनाकानी हो तो कह देना कि मैने माँगने के लिये भेजा है।" कहती हुई वह जिद करने लगी। मछियारा यह डाट डपट न सुन सका और समुद्र की तरफ फिर चल पड़ा।

समुद्र के किनारे जाकर "ओ मछली !" वह जोर से चिल्लाया। तुरन्त पानी से सिर उठा वह मछली बड़े प्रेम से पूछने लगा-"क्यों बेटा ! क्यों आना हुआ ?"

मछियारा घबराता घबराता कहने लगा-"ओ मछली! मेरी पत्नी ने मुझे फिर तेरे पास जाने के लिए कहा है। उसने तुमसे यह माँगने के लिए कहा है कि तुम हमारे पुराने झोपड़े को नया बना दो।"

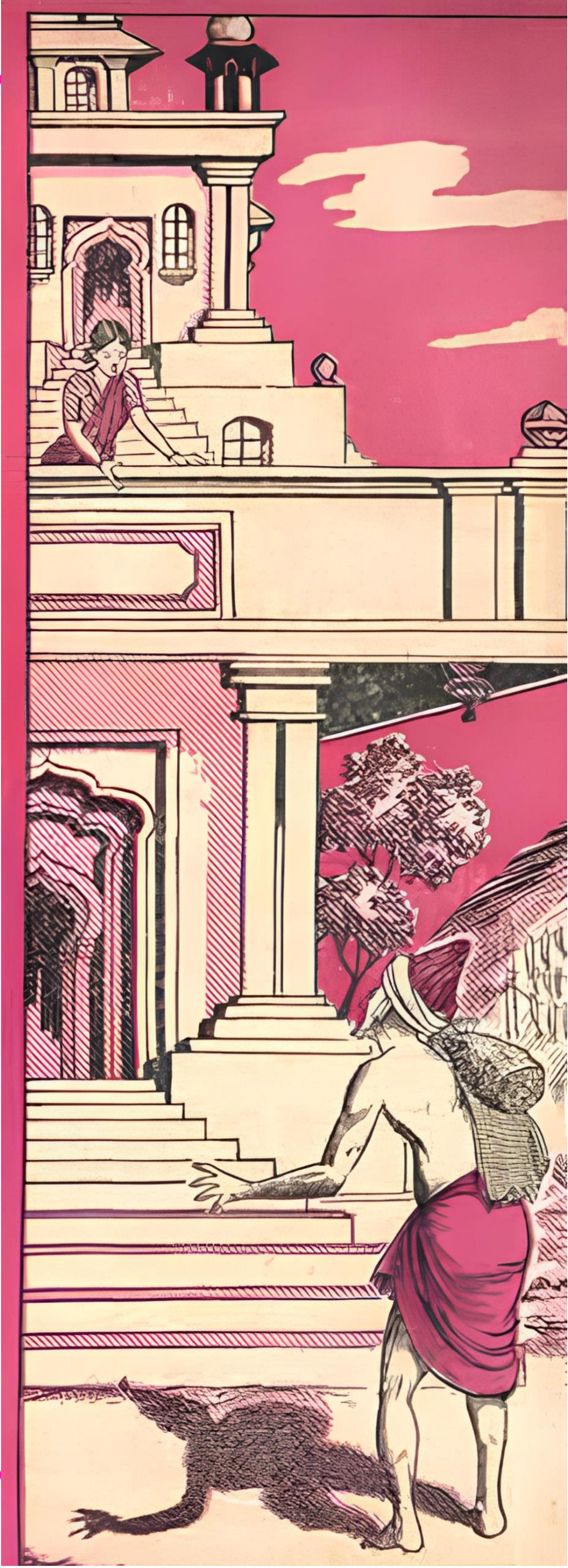
"अरे, अरे ! सिर्फ इतनी बात के लिए ही वापिस चले आये। अच्छा तो वैसा ही होगा।" मछली तुरन्त पानी में डूब गया।

मछियारा घर की ओर चला। अपने गाँव जाकर उसने देखा कि जहाँ उसका टूटा फूटा झोपड़ा था, वहाँ अब एक बड़ा

मकान था। दुमञ्जले पर खड़ी हुई उसकी पत्नी पुकार रही थी-"आईए, इधर सीढ़ी चढ़कर दुमञ्जले पर चले आईए।" इस तरह उसे प्यार से पुकारता देख वह अचरज में पड़ गया। पति को नया घर दिखा कर उसने अपनी अक्लमन्दी दिखाई। मछियारा भी यह सोचकर कि यह सब उसकी पत्नी की अक्लमन्दी से मिला है फूला न समाया।

उस परिवार ने पन्द्रह बीस दिन तो खुशी खुशी में बिता दिये। उसके बाद उसकी पत्नी ने फिर इस प्रकार कहा-"मैंने कहा, देखिए, अब तो घर काफी अच्छा है- अगर कोई रिश्तेदार वगैरह आ गए तो शायद जगह की तकलीफ होगी। और अगर हमारे भी बाल बच्चे होने लगे तो यह घर हरगिज़ काफ़ी न होगा। इसके अलावा यहाँ बड़ा अहाता भी नहीं है। फिर मछली के पास जाकर कहिये कि इससे भी बड़ा मकान और बड़ा अहाता चाहिए।"

पत्नी को ज़िद्द करता देख मछियारे ने फिर  समुद्र के किनारे जा उस मछली को पुकारा। मछली ऊपर निकल  आया, पूछा-"क्यों, क्या बात है?" मछियारे ने जवाब दिया -"मछली।  मेरी पत्नी ने मुझ





से कहला भेजा है कि हमारे मकान में जगह की जरा तङ्गी है और बड़ा अहाता भी नहीं है। वह चाहती है कि मकान और अहाता और बड़ा हो।"

"अच्छा, तो जाओ, ऐसा ही होगा।" मछली यह कह पानी में लीन हो गया। मछियारे ने गाँव जाकर देखा कि उसका मकान एक बड़ी इमारत में बदल गया है और इमारत के चारों ओर अच्छा बगीचा भी बन गया है।

फिर थोड़े दिन चैन से गुज़रे। बाद में मछियारे की पत्नी कहने लगी- "इतनी बड़ी इमारत में एक मामूली गृहस्थी की तरह रहना अच्छा नहीं लगता। अगर मैं एक रानी बन गई तभी इसी महल की शोभा है। आप जाकर फिर मछली से कहिये।"

यह सुन मछियारा उसे समझाने लगा-"बिना सन्तोष के इस तरह ऊटपटाँग माँग पेश करने से क्या मछली को गुस्सा नहीं आएगा?" मगर उसकी पत्नी अपने ही हठ पर अड़ी रही।

"कुछ भी हो, मैं नहीं जाऊँगा।" मछियारे ने भी जिद पकड़ी।

"अच्छा, आप नहीं जायेंगे तो मैं ही खुद जाकर मछली से माँगूगी।" कहती कहती वह चलने को तैयार हो गई। "अरे भगवान! और कोई चारा नहीं है।" यह सोचकर मछियारा फिर समुद्र के किनारे जा पहुँचा।

पहुँचते ही, पुकारने की देर थी कि मछली फिर पकट हुआ और प्रेम से पूछा-"क्यों बेटा ! क्यों आये हो ?" भय से काँपते हुए, मछियारे ने कहा- "मछली ! मेरी पत्नी ने यह कहला कर भेजा है कि वह एक रानी बनना चाहती है।"

"अरे, तो इतनी सी बात के लिए मेरे पास आये? अच्छा तो जाओ, तुम्हारी पत्नी रानी बन जाएगी।"

मछियारे के गाँव जाने पर उसके मकान की जगह, एक बहुत बड़ा राजमहल बना बनाया उठ खड़ा हुआ।

वह राजमहल नौकर चाकरों से खचाखच भरा हुआ था। राजमहल की ड्योढ़ी बहुत बड़ी और आलीशान थी। सिपाही पैनी तलवार लिए पहरा दे रहे थे। मछियारे को ड्योढ़ी पर अचम्भे में इधर उधर देखता पा, नौकर "जय महाराज जय महाराज" कहकर उसको सम्मान के साथ राजमहल के अन्दर ले गये।

अन्दर जाकर देखता है कि वहाँ एक बड़ा दरबार लगा हुआ है। उस दरबार में बड़े बड़े लोग बैठे हुए हैं। सभा के बीचों बीच, सोने के सिंहासन पर मछियारे की पत्नी बैठी हुई थी।

दासियाँ बड़े बड़े चामर लेकर उस पर हवा झल रहे थे।

यह सब देखकर पत्नी से मछियारे ने झुँझलाते हुए कहा- "अच्छा, अब तेरी सारी इच्छायें पूरी हो गई है न? दुनियाँ



भर के ऐश्वर्य का अनुभव कर रही हो। अब तो कोई ख्वाहिश बाकी नहीं रह गई है?"

"मेरी इच्छायें भला क्या पूरी हुई? इस भूलोक में एक छोटी रानी बन जाने में क्या बड़ी बात है ? आकाश में स्थित सूर्य और चन्द्रमा की जब मैं रानी बन जाऊँगी, तब मेरी इच्छा पूरी होगी।" यह कह वह पति को खिझाने लगी।

उसकी बातें सुन मछियारे को बड़ा दुःख हुआ। उसने समझाया-"नहीं, नहीं ऐसी आलतू फालतू इच्छायें तुम्हारे लिए अच्छी नहीं।" परन्तु उसकी चुड़ैल पत्नी ने एक न सुनी। वह अपनी बात पर डटी रही। और कोई रास्ता न देख मछियारा फिर समुद्र की तरफ यह कहता हुआ बढ़ा-"जैसा तेरा कर्म है वैसा ही होकर रहेगा।"

समुद्र के किनारे जाकर फिर मछली को बुलाया। मछली ने बाहर आकर पूछा-"'क्यों बेटा ! क्यों आये हो ?"

"मछली ! मेरी पत्नी को भूलोक में एक रानी बन जाने से तसल्ली नहीं है। वह सूर्य और चन्द्र लोक की भी रानी बनना चाहती है।"

"अच्छा, तो सिर्फ इसीलिए ही आये थे ! तुम्हारी पत्नी की इच्छा जरूर पूरी होगी। मगर इस जन्म में नहीं। इसलिए अब अपनी पत्नी से कहो कि चाहना छोड़ परोपकार करे।" मछली कहता कहता पानी में चला गया।

जब मछियारा वापिस गाँव पहुँचा तो वहाँ न राजमहल था, न नौकर-नौकरानियाँ हीं। उसी जगह वही पुरानी, टूटी फूटी झोपड़ी उसकी आखों के सामने आ गई। अन्दर जाकर देखा कि उसकी पत्नी रोती-धोती, बैठी थी।





# गुणमणि

दो सौ साल पहिले मैसूर प्रान्त में एक छोटा सा राज्य हुआ करता था। राज्य का नाम 'निजगल्ल' था और वहाँ के राजा का नाम रामस्स नायक था। वह बहुत ही बीर और सहृदय शासक था। उसकी मुख्य रानी का नाम 'लकुमब्बा' था।

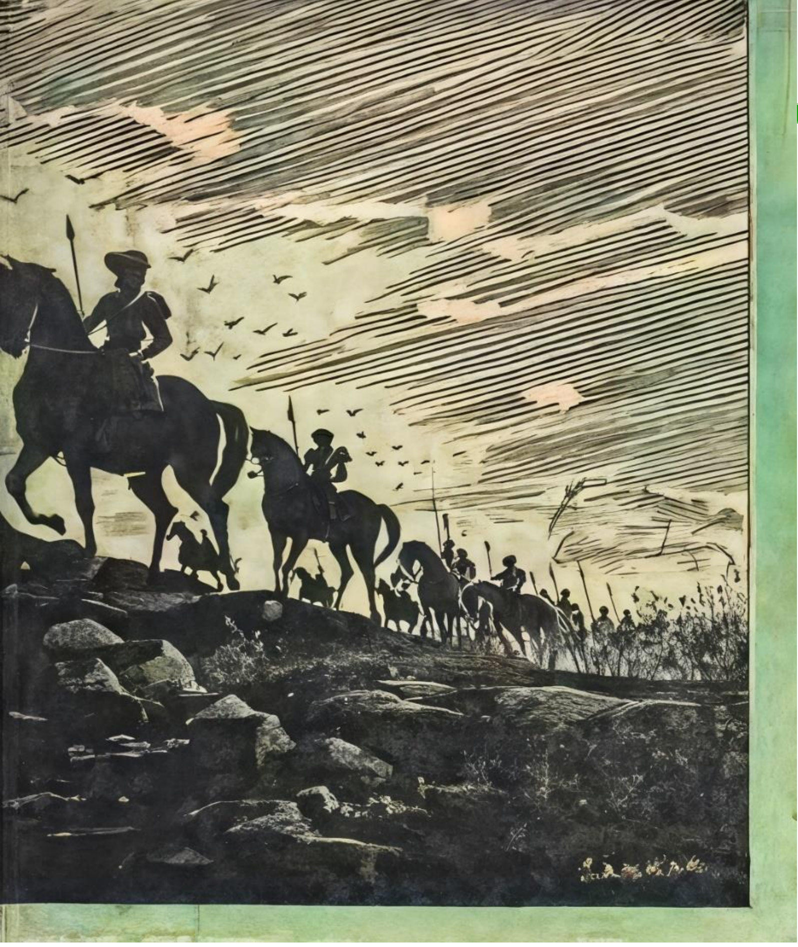
राजा के पास सभी वैभव और ऐश्वर्य थे। परन्तु एक ही कमी थी। विवाह हुये दस वर्ष हो गये थे, पर अभी तक सन्तान न हुई थी। उन्होने हर तरह की पूजा करवाई, तीर्थों की यात्रा की, पर कोई फायदा न हुआ।

लकुमब्बा का मन चिन्ता से अशान्त रहने लगा। जब राज्य है तो राज्य के लिये युवराज भी होना चाहिये। उसके होने पर ही शासन ठीक तरह चलता है। नहीं तो अराजकता फैल जाती है। इसलिये वे सोच विचार में पड़ गई। बहुत सोचने के बाद उन्हे एक तरीका सुझा। तुरन्त उन्होने अपने एक पास के सम्बन्धी को खबर भिजवाई और उसको अपनी सहेली के रूप में रख लिया। वह अत्यन्त सुन्दरी और सुगुणा थी। उसका नाम था 'गिरजव्वा'।

इस गिरजव्वा के बारे में, मुख्य रानी ने राजा से बहुत बढ़ा चढ़ा कर कहा। उन्होने राजा से बिनती की कि वे उससे विवाह कर ले। पहले पहल तो राजा ने इसे स्वीकार नहीं किया, मगर बार-बार कहे जाने पर, वह गिरजव्वा को रानी बनाने के लिए मान गया।

राजा की गिरिजव्या के साथ शादी होने पर, लकुमब्बा का सङ्कल्प काफी अंशों तक पूरा हो गया। परन्तु गिरजव्वा के विवाह के बाद, उसकी माँ अपना अधिकार चलाने

सतीश नारायण



की कोशिश करने लगी। वह अपनी लड़की को भड़काने लगी- "लकुमब्बा की बात न चलने देना। तुझ पर ही राजा का अधिक प्यार है, इसलिए उन पर रौब चढ़ाकर अपना काम बनाती चल।"

माँ के इस तरह भड़काने पर भी गिरजब्बा में कोई परिवर्तन नहीं आया। वह मुख्य रानी के प्रति कृतज्ञ थी, क्यों कि उन्हीं के अनुग्रह से, वह रानी बनने का सौभाग्य पा सकी थी। उनको इसलिए कभी नीचा नहीं दिखाया। कुछ भी हो, सौभाग्य से, दो वर्षों के बाद गिरजब्बा को पुत्र पैदा हुआ। राजा, प्रजा, और सबसे अधिक लकुमब्बा को वर्णनातीत खुशी हुई। उत्सव मनाए गए।

गिरजब्बा का कस्तूरी नायक नाम का एक छोटा भाई था। वह दुष्ट था, मूर्ख भी। वह बुरे आदमियों की सोहबत में रहता था। जब से गिरजब्बा की शादी हुई थी, तभी से वह महल में रहता आया था। रानी साहिबा का भाई होने के कारण राज्य में उनको अच्छा ओहदा और अधिकार वगैरह भी मिले हुये थे।

एक दिन अचानक शत्रु सेनायें महल में आ घुसी। इसका कारण कौन था? कस्तूरी नायक ही। वह शत्रुओं से साजिश करके, अपने जीजा को गद्दी पर से हटाकर निजगल राज्य का सिंहासन स्वयं हथियाना चाहता था। मन में यह दुरुद्देश्य रख कर, वह ऊपर ऊपर से राजा से बहुत मिलजुल कर रहता था। कस्तूरी नायक का विश्वास कर राजा ने उसको सेनापति नियुक्त किया।

सेनापति के पद पर होने के कारण, कस्तूरी नायक को अच्छा मौका मिल गया। वह आस-पास के राजाओं के साथ षड़यन्त्र रचने लगा। उसने उनसे कहला भेजा

फलाने दिन-रात्री के समय तुम धावा बोलना। मैं किले के दरवाजे खुलवाने का प्रबन्ध कर दूँगा।"

कस्तूरी नायक के कहने के मुताबिक रात को शत्रु किले में घुसे गये। विश्वासघाती कस्तूरी नायक ने शत्रु से मुकाबला करने का ढोङ्ग किया। परन्तु उसकी पोल जल्दी खुल गई। अफसोस कि उस युद्ध में रामस्स नायक वीरगति को प्राप्त हुआ। निजगल्ल शत्रु के हाथ में चला गया।

कस्तूरी नायक शत्रु-दल के सेनापति से प्रार्थना करने को ही था कि उसे राजा बना दिया जाय, कि सेनापति ने गिरजब्बा के सौन्दर्य को देख कर एक नई शर्त रखी। शर्त यह थी कि अगर गिरजव्वा उससे शादी करेगी तो उनसे पैदा होने वाले पुत्र को राजा बना कर कस्तूरी नायक को राज प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त करेगा।

क्यों कि और कुछ किया न जा सकता था कम्तूरी नायक यह शर्त भी मान गया। गिरजब्बा का मत जानने के लिए दोनों मिल कर उसके पास गये। शत्रु सेनापति ने



अपना उद्देश्य उसके सामने रख तुरन्त जवाब माँगा। गिरजब्बा ने कहा "अगर भाई मान जाता है तो मुझे भी कोई आपत्ति नहीं है।"

कस्तूरी नायक न हिचका, न झिझका। उसने तुरन्त कहा-"मैं तो मान ही गया हूँ। मानने के सिवाय चारा ही क्या है।" तब गिरिजव्वा ने एक इच्छा प्रकट की। उसने कहा-"हमारी कुल परम्परा के अनुसार, विवाह से पहिले, मुझे और मेरे भाई को, एक जुलूस के साथ नगर की परिक्रमा करनी है।" यह विचित्र इच्छा सुन सब आश्चर्य में पड़ गये। शत्रु-दल का सेनापति गिरजब्बा की इच्छा को मान गया।

जुलूस के लिए जरूरी तैयारियों की गई। यह सब जान कर, लकुमब्बा सलाह देने गई कि वह शत्रु सेनापति से शादी न करे। पर गिरजव्वा के कान में उसकी सलाह पड़ी नहीं। उनकी सलाह न सुनने का यह मतलब नहीं था कि गिरजव्वा को लकुमब्बा के प्रति भक्ति न थी। उसने मन में एक बड़े उद्देश्य को साधने का निश्चय कर रखा था। जुलूस के समय, बहिन लकुमव्वा को अपना पुत्र सौंपते हुए उसने कहा-"बहिन जी। यह अब आपका लड़का है।" वह चली गई।

गिरजव्वा के इच्छानुकूल भारी जुलूस निकला; एक तरफ से कस्तूरी नायक का और दूसरी तरफ़ से गिरजव्वा का। दोनों जुलूस, नगर के बीचों बीच वाले ऊँची चट्टान पर मिले। वहाँ गिरजव्वा ने छोटे भाई की आरती उतारी और कहा-"मैं तेरे ही कारण तो इतने बड़े पद को प्राप्त कर सकी।" यह सच मान कस्तूरी नायक खुशी से फूल उठा।

मरने से पहिले मानों गिरजव्वा ने शक्ति रूप धारण कर लिया। वह रौद्र हो उठी-"द्रोही। मेरी वजह से और मेरे साथ आए हुए तेरी वजह से रामस्स नायक का घर बरबाद हो गया। हम दोनों की वजह से, सात पीढ़ी तक दोनों देशो की बदनामी होती रहेगी। हम जैसे महापापियों का जीते रहना मातृभूमि के लिए भारमात्र है।" कहती कहती भाई से आलिङ्गन में चिपट गई और उस पत्थर की चोटी से नीचे कूँद पड़ी।

नीचे गिरते ही वे दोनों प्राणी इस संसार से कूच कर गए। गुणनणि, पूज्या गिरजव्वा जहाँ बलिदान हुई थी उस स्थान पर एक गाँव बसा जो आज तक विद्यमान है।






कृष्णा नदी के किनारे एक सुन्दर घर था। घर तो ऐसा खास बड़ा नहीं था; पर अच्छा, साफ, देखने लायक जरूर था। उसमें रहनेवाले दम्पति को दो जुड़वा बच्चे पैदा हुए। दोनों ही लड़के थे।

जुड़वे बच्चों के पैदा होने के कुछ दिन बाद ही उनका पिता गुजर गया। इसलिए सारी की सारी जिम्मेवारी उनकी माँ कृष्णवेणी पर आ पड़ी। चूँकि उनके पास थोड़ी बहुत जमीन जायदाद थी, गुजारे के लिए कोई कमी न थी। जैसे जैसे उम्र बड़ी होती गई वैसे वैसे कृष्णवेणी के लिए घरबार चलाना मुश्किल हो गया।

जुड़वे बच्चों के बारे में तो कहना ही क्या ! ऐसा लगता था जैसे एक ही साँचे में डालकर दोनों को तैयार किया गया हो। उनके माँ बाप ने उनका नाम राम लक्ष्मण रखा था। शक्ल सूरत में अवश्य दोनों एक जैसे थे, पर जैसे जैसे वक्त गुजरता गया तैसे तैसे उनके गुण में काफ़ी भेद दिखाई देने लगा।

राम बड़ा था। वह आलसी और दुष्ट स्वभाव का था। छोटा भाई लक्ष्मण बड़ा प्यारा था। लोगों में अच्छा लड़का माना जाता था। दोनों में, मोटे तौर पर यही भेद था।

होते होते राम बहुत ही बिगड़ गया। उसने भाई से झगड़ा मोल ले लिया और उसे बुरी तरह पीटा। क्यों कि वह लक्ष्मण से अधिक ताकतवर था, उसने उसे घर से बाहर निकालने की भी हिम्मत की। लक्ष्मण उसका मुकाबला न कर सका।

माँ, यह सब दिक्कतें चुप चाप सह लेती। वह बड़े लड़के से कुछ कह न पाती थी।

कुमारी उर्मिला



"माँ, तुम बुरा न मानो। सब रोज एक जैसे नहीं होते हैं, कभी अच्छे दिन भी आयेंगे।" कहकर लक्ष्मण ने माँ को ढाढ़स बँधाया और उनका आशीर्वाद पा चला गया। बदमाश राम की थोड़े दिनों बाद शादी हो गई। उसकी व्याही हुई पत्नी चुडैल थी। इसके अलावा, बेअक्ल भी। बहु सास की एक मिनट न पटती थी। घर का मुखिया राम पत्नी के ईशारे पर नाचता था। जैसा वह कहती वैसा वह करता। पति ने छूट दे रखी थी; इसलिए उसका हौसला बढ़ गया और कृष्णवेणी को बुरी तरह सताने लगी। नई बहू का ही बोलबाला था, जो वह कहती बही घर का कानून था। कृष्णवेणी यह सब बर्दाश्त न कर सकी। इस वजह से दोनों की तनातनी दिन प्रति दिन बढ़ती गई।

आखिर, जब और कुछ न हो सका, राम ने पत्नी की बात सुन माँ को भी घर से निकाल दिया। "कभी अच्छी जिन्दगी देखी थी, और अब यह नौबत आगई है।" सोचकर वह अक्सर अफ़सोस किया करती। फिक्र के मारे काँटे सी हो गई। घरबार तो था ही नहीं, बिचारी गली गली फिरा करती। अपने भाग्य को रोया करती।

लक्ष्मण घर छोड़ने के बाद, जिस तरफ पैर चल पड़े उसी तरफ चल पड़ा। न कोई राह न मञ्जिल। जाते जाते उसे जङ्गल में एक गुण्डों का गुट मिला। गुट ने लक्ष्मण से चाहा कि वह गुट का सरदार बन जाय। यह समझकर कि शायद भगवान की यही मर्जी है, वह गुट का सरदार बन गया। मगर उसकी शराफत न गई।

इस तरह उनका सरदार बन जाने में, लक्ष्मण के मन में अपना एक मतलब भी था। उसका ख्याल था कि उस गुट के

द्वारा कुछ काम काज करवा कर, अपने भाई को सही रास्ते पर ला सकेगा। अब लक्ष्मण को अच्छा मौका मिला। काफी आदमी हाथ में थे और जरूरी ताकत भी। उसे जरा ढ़ाढ़स हुआ। वह प्रायः घर की खबरें अपने गुट के जरिये मालूम कर लिया करता था। वह धीमे-धीमे अपनी माँ की मुसीबत के बारे में भी जान गया। उसने तुरत माँ को अपने पास बुला लिया और जङ्गल में एक अच्छी जगह उसके रहने का इन्तजाम भी कर दिया।



लक्ष्मण की भाभी का घर में अधिकार था। भाई राम उसका गुलाम सा बन गया था। वह जो लकीर खींचती उसी पर वह चलता। इस हालत में लक्ष्मण ने निश्चय किया जब तक पति पत्नी में मनमुटाव नहीं पैदा किया जाता तब तक उनकी बीमारी सुधरेगी नहीं। वह यह हरगिज़ न चाहता था कि भाई का किसी तरह बुरा हो। बिना तकलीफ के ही वह भाई की अक्ल ठीक करना चाहता था।

गुट के गुण्डे कोई मामूली आदमी नहीं थे। वे बहुत ही चलते पुरज़े थे। पहले पहल लक्ष्मण ने भाई के घर के आङ्गन में से गाय खोल कर लाने को कहा। माँ को उस गाय का दूध दिलवाने का खास प्रबन्ध करवा दिया।

अगले दिन, आँगन में गाय के न दीखने पर राम ने पत्नी से पूछताछ की। पत्नी के होश हवाश उड़ गए। दोनों में झगड़ा पैदा हो गया। वह कहती-"मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम है, भला मैं क्या जानूँ ?" वह कहता-"अगर घर में रहने वाली तुझ को नहीं मालूम है तो किस को मालूम होगा?" गुस्से में उसने पत्नी को खूब मारा पीटा। लक्ष्मण को पहले ही मालूम था कि



ठीक ऐसे ही गुजरेगी। उसका अनुमान एकदम सही निकला। पर उसने अपना काम वहीं बन्द नहीं किया। इसके बाद एक और अजीब घटना घटी। गिरोह के गुण्डे, मौका मिलने पर राम के घर के पड़ोसिों के घरों में घुस जाते और कीमती साडियाँ चुरा लाते। और उन कीमती साडियों को राम की पत्नी को यह कह कर दे देते कि उसके पति ने वे भेजी हैं।

राम की पत्नी में अक्ल तो थी ही नहीं, सच मानकर उनको खुशी खुशी ले भी लेती थी। और इतनी खुश हो जाती कि अड़ोस पड़ोस की स्त्रियों को बुलाती और कहती-"देखी आपने ? हमारे घरवाले ने कैसी कैसी कीमती साडियाँ भेजी हैं ?" एक एक करके सब साडियाँ दिखाती भी। वह तब फूली न समाती।

औरतें अपने अपने पतियों के पास जाकर यह बात कहती। कुछ दिनों बाद गाँव में अफवाह उड़ी की राम औरतों की साडियाँ चुराकर अपनी पत्नी को दे रहा है। "अगर यकीन नहीं हैं तो आओ तलाशी लें राम के घर की, चोरी की चीजें सब वहीं बरामद होंगी।" कहते कहते गाँव वाले उसके घर की ओर गये।

एक साथ इतने गाँव बालों को आता देख, राम ने उनको रोकने की भरसक कोशिश की। "तू चोर है, पहले दरजे का चोर है, नहीं तो हमें अन्दर क्यों नहीं जाने देता?" गाँव वालों ने धमकाया।

तब राम की न चली। उसने कहा- "अच्छा जितना चाहो उतना देख लो।" और गुम्से में एक एक करके घर के सन्दुक बाक्स वगैरह, उनके सामने फेंकता गया।

"अरे, आओ, आओ भी।" गाँव वाले एक दूसरे को कहते हुए घर पर के अन्दर

घुस गए और हर चीज़ की जाँच पड़ताल करने लगे। और ताज्जुब यह कि चोरी गई हुई साडियाँ उस घर के सन्दूकों में मिली। रङ्गे हाथ पकड़ा गया था, भला कैसे कहता कि "मैंने चोरी नहीं की है।" अगर राम कहता भी तो वहाँ उसका विश्वास कौन करता ? गाँव वाले आग बबूले हो गये।

उन्होंने राम को पकड़ा और बाँधा, उसकी बुरी तरह चटनी बना दी। लोगों में यह बात फैल गई कि राम पक्का चोर है और उस पर नजर रखे रहनी चाहिए। बहुत पिट-जाने पर राम को कुछ समझ में नहीं आया। उसने सोचा यह सब उसकी चुडैल पत्नी की ही करतूत है। भागा भागा अन्दर गया और पत्नी की खूब डण्डे से पूजा की। हड्डी पसली एक कर दी।

"क्या है यह गड़बड़ ?" राम ने गरजते हुए पत्नी से पूछा। वह इधर उधर देखने लगी, उसे कुछ समझ में न आये। मार पड़ती गई पर उसने चूँ तक नहीं की। हाँ, फिर वह कह भी क्या सकती थी ? उसको भी कुछ न मालूम था, शायद सोचती होगी कि किसी ठग की शरारत है। उसने



कसम खा ली कि जो भी कोई हो उसे ढूँढ निकाल उसको अच्छी सजा देगी। मगर इस बीच, राम ने पत्नी से कहा-"मैंने कहा, मुझे जरूरी काम पर एक गाँव जाना है। वापिस आने में एक हफ्ते से ज्यादा लगेगा।" बेअक्ल पत्नी ने यकीन कर लिया।

दिन भर जैसे तैसे इधर उधर घूम फिर कर उसने वक्त काट दिया और आधी रात के करीब अचानक घर आ गया। धीमे धीमे दीवार के सहारे, बिना आहट के अन्दर भी घुसा। राम की पत्नी, विना सोये, चौकन्नी बैठी थी।



वह उन लेगों को सबक सिवाना चाहती थी। धीमे धीमे. छाया की तरह किसी को आता जान उसने सोचा कि चोर आ रहा है। वह लेटी हुई चुरचाप उठ बैठी। चाकू निकाला। राम इस चिन्ता में था कि चोर कौन है पता लगाये और पत्नी इस फिक्र में थी कि चोर को कैसे सज़ा दी जाय। राम अन्दर आकर खिड़की की सीखञ्चों में से अन्दर देखने लगा।

जब राम खिड़की के पास खड़ा, सीखञ्चों में से झुक कर देख रहा था, तब ताक में बैठी हुई पत्नी जल्दी जल्दी उठी। "अब मिल गया चोर" सोचती सोचती, गुग्से में वह चोर की नाक तराशने लपकी।

राम की आँखें चोर को खोज रही थी, इस कारण वह पहचान नहीं पाया कि अन्धेरे में कौन उसकी नाक काट रहा है। उसने अनुमान किया कि शायद यह सब उस चोर की ही करनी है।

नाक के कटते ही राम जोर से चिल्ला उठा। उसके शोर से छत भी हिल उठी। उसने सोचा कि चिल्लाना सुन आस पास के लोग भागे हुए आयेंगे, और चोर को पकड़ कर सजा देंगे।

यह सब हो जाने के बावजूद, पति पत्नी दोनों अब भी चोर को पकड़ने के लिए जी जान से कोशिश कर रहे थे। उन दोनों की यही जिद थी कि वे उस चोर को पकड़ ले जो बिना दीखे ही वह नाटक खेल रहा था।

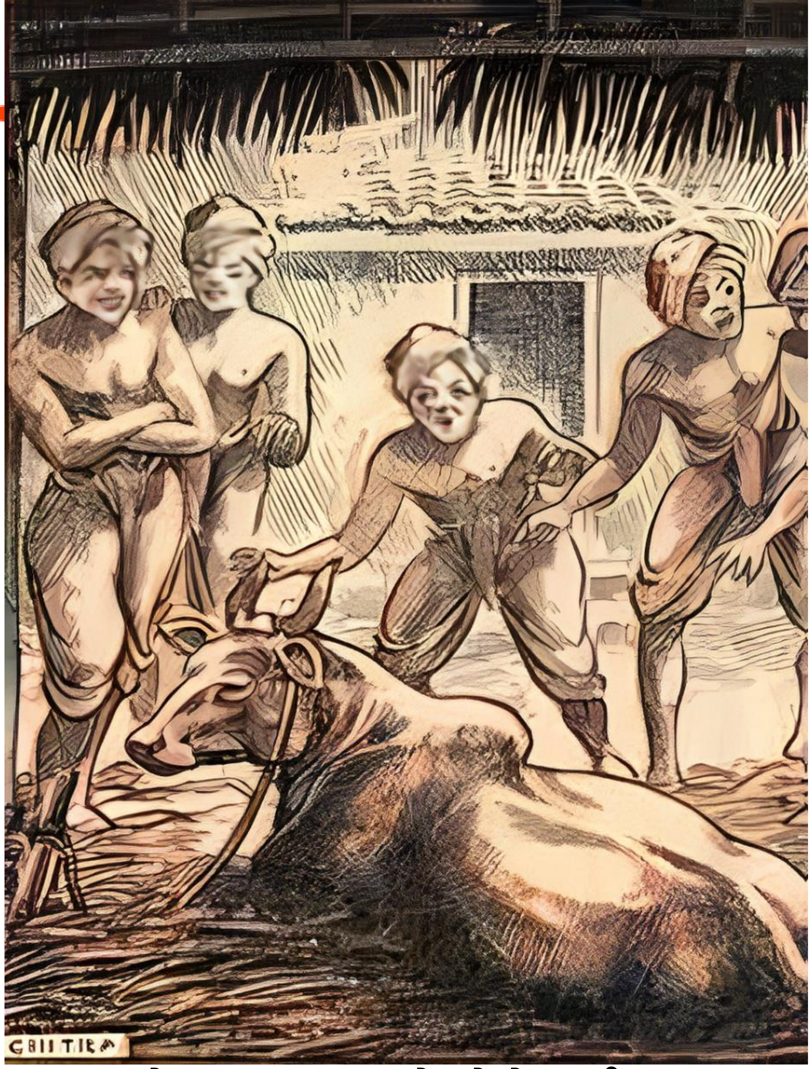
ऐसे समय में उसका चिल्लाना सुन जो उसके पास आये वे अड़ोसी पड़ोसी नहीं थे, बल्कि उसका छोटा भाई लक्ष्मण ही था। उस परिस्थिति में लक्ष्मण को वहाँ देख उन दोनों के दिल काँप गए। लक्ष्मण ने तुरन्त भाई की नाक पर पट्टी बाँधी। उनको ढाढस दिया। और उसके पैरों पर पड

माफी माँगी। "भाई ! मेरा अपराध क्षमा करो। जब से मैने घर छोड़ा है तब से जो जो आफतें तुझे झेलनी पड़ी हैं, वे सब मेरी ही वजह से हुई हैं। जो गुजर गया है उसके बारे में फिक्र मत करो। अब आफतें खतम हो गई हैं।"

राम को कुछ समझ में नहीं आया। तब लक्षण ने राम का धैर्य बँधाया और उसके बाद उसे अपने जङ्गल वाले घर में साथ ले गया।

वहाँ जाते ही राम की नजर में उसकी गाय आई। राम को अचरज हुआ। लक्ष्मण भाई को घर के अन्दर ले गया। सामने आ, "बेटा, बेटा" कहती, माँ ने राम को गले लगा लिया। राम छोटे बच्चे की तरह सिसक सिसक कर रोने लगा। राम माँ के पैरों पड़ कहने लगा-"माँ! मेरी अक्ल मेरे बस में न थी। पत्नी की बातें सुन बिगड़ गया था। उसी कारण मेरी जान आफत में पड़ गई। माँ मुझे माफ करो।"

उधर लक्ष्मण ने अपने सब कारनामें भाई को कह सुनाये। माँ की उसने कैसे देख भाल की यह भी उसने



उसको सुनाया। तब से दोनों भाई विना किसी झगड़े झञ्झट के, एक दूसरे से हिल-मिल कर प्यार से रहने लगे। भाई की तरह राम भी माँ की पूजा करने लगा।

लक्षण उन सब गुण्डों को सही रास्ते पर लाया जो उसके साथ थे। लक्ष्मण की निगरानी में उन्होंने कई ऐसे भी कार्य कर दिखाए जिससे संसार का भला होने लगा। इस तरह लक्षण की नेकी से उधर उसके भाई और भाभी का सुधार हुआ और इधर गुण्डों का गुट भी सन्मार्ग पर आया।

CHANDAMAMA (Hindi) JULY 1964 Regd. No: M. 848



रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र – २